जुलाई-दिसबंर, 2012
ISSN:2320-7736

सत्यमेव जयते

विज्ञान गरिमा सिंधु

संयुक्तांकः 82-83

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

ISSN 2320-7736

विज्ञान गरिमा

सिंधु

(त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका)

संयुक्तांक 82-83

जुलाई-दिसंबर, 2012

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

मानव संसाधन विकास मंत्रालय

उच्चतर शिक्षा विभाग

भारत सरकार

अध्यक्ष की कलम से...

विज्ञान गरिमा सिंधु का प्रस्तुत संयुक्तांक (82-83) पाठकों के सेवा में प्रस्तुत है । विज्ञान के नए आयामों के आजकल मानव द्वारा अंधाधुंध उपभोग के कारण क्षीयमाण प्राकृतिक संसाधनों के विषय में हमारे विज्ञान लेखनों ने सबका ध्यान आकृष्ट किया है। डॉ. दिनेश मणि के सशक्त कलम ने ऊर्जा संरक्षण के क्षेत्र में पवन ऊर्जा, समुद्री ऊर्जा, भूतलीय ऊर्जा, हाइड्रोजन संसाधन का उपयोग, आदि का वर्णन करते हुए इन सभी कार्यो में सामाजिक ओर राजनीतिक प्रतिबद्धता की आवश्यकता का संदेश दिया है । पवन ऊर्जा की संभावनाओं की दृष्टि से उसके विकास का मार्गदर्शी चित्र डॉ. दीपक कोहली ने प्रस्तुत किया है। हमारी तेजी से ह्रासमान जलसंपदा के संरक्षण के बिंदुओं पर 'जल साक्षरता' लेख में ध्यान दिलाया गया है । इसी तरह जैव विविधता के संरक्षण के विभिन्न पहलुओं पर डॉ. एम के चतुर्वेदी ने प्रेरक लेख लिखा है । पर्यावरण-संरक्षण के संदर्भ में 'मोबाइल टावरों' से उत्पन्न खतरों पर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया है ।

वनस्पति जगत के क्षेत्र में प्रस्तुत अंक में पान (श्री सतीश चंद्र सक्सेना), पलाश (डॉ. नवीन कुमार बौहरा), और घृतकुमारी (डॉ. रीति थापर कपूर) के रोचक पक्षों का चित्रण किया गया है । नींबू के उत्पादन की प्रौद्योगिकी का सविस्तार वर्णन डॉ. राजू भारद्वाज के लेख में है ।

इस अंक में सन् 2011 में भौतकी के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों की उपलब्धियों का उल्लेख है । साथ ही भारत की 'अनुसंधान प्रयोगशालाओं के पिता' के रूप में विश्वविख्यात वैज्ञानिक डॉ. शांतिस्वरूप भटनागर के कृतित्व पर व्यापक प्रकाश डालकर उनका पुन:स्मरण किया गया है ।

स्वास्थ्य विज्ञान के संदर्भ में 'मर्म चिकित्सा' का परिचय दिया गया है । डॉ. जे. एल. अग्रवाल ने कॉल सेंटरों के कर्मियों के मानसिक, शारीरिक, और परिवेशपरक समस्याओं का विवेचन और उनके निदान पर समाधान प्रस्तुत किया है।

इस अंक के एक अन्य रोचक लेख में यह बताया गया है कि विज्ञान तथा साहित्य की संकल्पनाएँ परस्पर मिलकर समाज को नए भाषा-प्रयोगों से किस प्रकार समृद्ध करती हैं । 'वनस्पतियों का हिंदी भाषा में योगदान' शीर्षक लेख वैज्ञानिक-त्रयी डॉ. कृष्ण महाजन, रवीना, एवं पूर्वा की रोचक प्रस्तुति है । हम विज्ञान गरिमा सिंधु में प्रकाशनार्थ प्राप्त लेखों के लिए हिंदी में विज्ञान-लेखन करने वाले वैज्ञानिकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं । सुधी पाठकों की प्रतिक्रिया और उनके विचारों-सुझावों की हमे प्रतीक्षा रहेगी ।

इस पत्रिका के संपादन-कार्य के लिए आयोग के वैज्ञानिक अधिकारी श्री अशोक एन सेलवटकर भी सराहना के पात्र हैं क्योंकि वे आयोग में अपने नियमित कार्य-अनेक विषयों में शब्दावली निर्माण, परिभाषा कोश- तकनीकी कार्यशाला- पाठमालाओं का प्रकाशन, आदि के साथ-साथ इस पत्रिका का कार्यभार भी सहर्ष संभाले हुए हैं ।

18 दिसंबर, 2012
नई दिल्ली

(प्रो. केशरी लाल वर्मा)
प्रधान संपादक
अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

विज्ञान गरिमा सिंधु

हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन की स्तरीय त्रैमासिकी

अंक 82-83, जुलाई-दिसंबर 2012

प्रधान संपादक

प्रो. केशरी लाल वर्मा

संपादक

श्री अशोक सेलवटकर

संपादन सहयोग

श्री देवेंद्रदत्त नौटियाल

डॉ. बी.के सिन्हा

प्रकाशन/मुद्रण

डॉ. धर्मेन्द्र कुमार
सहायक निदेशक

श्री कर्मचंद शर्मा
प्र.श्रे.लि.

बिक्री एवं वितरण

डॉ. बी.के. सिंह
वैज्ञानिक अधिकारी

कलाकार

श्री आलोक वाही

संपर्क सूत्र

'संपादक'
"विज्ञान गरिमा सिंधु"
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड-7
आर. के. पुरम
नई दिल्ली-110066

संपादकीय

1.	नींबू उत्पादन प्रौद्योगिकी एवं उद्यान प्रबंधन	डॉ. राजू भारद्वाज	1
2.	ऊर्जा संरक्षण की बढ़ती आवश्यकता	डॉ. दिनेश मणि	7
3.	2011 में भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक	डॉ. विजय कुमार उपाध्याय	11
4.	घर के ऊपर खड़ी मौत: मोबाइल टावर	विजन कुमार पांडेय	13
5.	जैव विविधता संरक्षण	डॉ. ए. के. चतुर्वेदी	16
6.	महान भारतीय रसायनज्ञ : प्रो. शांती स्वरुप भटनागर	मधु ज्योत्सना	20
7.	ऊर्जा का प्राकृतिक विकल्प : पवन ऊर्जा	डॉ. दीपक कोहली	25
8.	जल साक्षरता	डॉ. श्रीकृष्ण महाजन	28
9.	शंख	डॉ. परशुराम शुक्ल	33
10.	पान: गुणों की खान	श्री सतीश चंद्र सक्सेना	36
11.	स्वास्थ्यवर्धक मधुमक्खी उत्पाद	डॉ. एस.डी. शर्मा डॉ. जितेंद्र कुमार	39
12.	मर्म चिकित्सा: एक प्रभावी चिकित्सा पद्धति	डॉ. सुनील कुमार जोशी डॉ. मृदुल जोशी	43
13.	घृतकुमारी: प्रकृति का अद्भुत वरदान	डॉ. रीति थापर कपूर	46
14.	वनस्पतियों का हिंदी भाषा में योगदान	प्रो. श्रीकृष्ण महाजन डॉ. रवीना महाजन, पूर्वा महाजन	49
15.	कॉल सेंटर के कर्मियों की स्वास्थ्य समस्याएं	डॉ. जे. एल. अग्रवाल	53
16.	भारत में पाए जाने वाले प्रमुख वन्यजीव	डॉ. सी. पी. सिंह	57
17.	जंगल की आग - पलाश	डॉ. नवीन कुमार बौहरा	59
18.	विज्ञान समाचार	डॉ. दीपक कोहली	61

परिशिष्ट:

लेखक परिचय	65
आयोग के प्रकाशनों की सूची	66
ग्राहक फार्म	72
बिक्री संबंधी नियम	73

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों, विचारों आदि से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के प्रचार-प्रसार के साथ हिंदी में लेखन को प्रोत्साहन देने के लिए यह पत्रिका प्रकाशित की जाती है।

'विज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है - हिंदी के माध्यम से विश्वविद्यालयी छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली चर्चा, विज्ञान-कविताएं, विज्ञान कथाएं, विज्ञान समाचार, पुस्तक समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित सामयिक विषय पर होना चाहिए।
3. लेखन सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसमें दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी अवश्य भेजें। लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें।
6. लेख में प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
7. श्वेत-श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं। रेखाचित्र सफेद कागज पर काली स्याही से बने होने चाहिए।
8. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
9. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है, अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अत: लेखक कृपया टिकट लगा लिफाफा न भेजें।
10. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250/- रुपए प्रति हजार शब्द है तथा न्यूनतम राशि 150/- रुपए और अधिकतम राशि 1000/- रुपए है।
11. भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
12. लेख email द्वारा फोंट के साथ भेजे जा सकते है।
13. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:

    अशोक सेलवटकर
    संपादक, 'विज्ञान गरिमा सिंधु'
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
    (मानव संसाधन विकास मंत्रालय)
    पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम,
    नई दिल्ली-110066

15. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

सदस्यता शुल्क :

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
प्रति अंक व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
प्रति अंक विद्यार्थियों के लिए	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

वेबसाइट: www.cstt.nic.in

कापीराइट ©

प्रकाशक:
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
मानव संसाधान विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड-7,
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली - 110 066

बिक्री हेतु पत्र-व्यवहार का पता :
वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली - 110 066
दूरभाष - (011) 26105211
फैक्स - (011) 26102882

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग,
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स,
दिल्ली - 110 054
email: vgs.cstt@gmail.com

1

नींबू उत्पादन प्रौद्योगिकी एवं उद्यान प्रबंधन

डॉ. राजू भारद्वाज

नींबू बहु-उपयोगी फल है जिसका उपयोग ताजा खाए जाने के अतिरिक्त, साइट्रिक अम्ल, परिरक्षित रस, पेय पदार्थ, मार्मलेड, अचार, तेल, इत्र व दवाइयां आदि बनाने में किया जाता है। फलों में विटामिन ए, बी, सी, जी और खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। विटामिन सी की अधिकता के कारण स्कर्वी रोग के उपचार में भी इसका उपयोग किया जाता है।

जलवायु: नींबू उत्पादन के लिए गर्म, पाला रहित व शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है जहाँ वर्षा 100-150 सेमी. होती हो नींबू की पैदावार के लिए वर्ष भर मिट्टी में उचित नमी होनी आवश्यक है, परंतु जल निकासी अच्छी होनी चाहिए।

मिट्टी: नींबू के सफल उत्पादन के लिए मृदा की गहराई व जल-निकास का बड़ा महत्व है। मिट्टी में 1.5 मीटर गहराई तक कोई कड़ी परत नहीं होनी चाहिए। अधिक उपजाऊ दुमट मृदा नींबू की बागवानी के लिए अधिक उपयुक्त रहती है। नींबू की अच्छी उपज के लिए 5.5 से 6.5 p.H मान वाली मिट्टियाँ अच्छी रहती हैं।

उपयुक्त किस्में :-

(1) कागजी :- इसके पौधे छोटे, झाड़ीदार तथा नुकीले कांटे वाले होते हैं। पत्ती छोटी, पंखदार व किनारे दांतेदार होते हैं। फल छोटे, हरापन लिए पीले पतले छिलके वाले, रसदार एवं बहुत खट्टे होते हैं, उदाहरणार्थ प्रमालिनी, विक्रम।

(2) बारहमासी :- इस किस्म के फल गोल, रस युक्त और मध्यम आकार के होते हैं। इसमें वर्ष में फूल तीन बार आते हैं।

प्रवर्धन :- नींबू वर्गीय फलवृक्षों को बीज द्वारा अथवा कायिक प्रवर्धन विधियों द्वारा लगाया जा सकता है। ऐसे पौधे देर से फल देते है परंतु ये अधिक सहिष्णु और दीर्घजीवी होते है।

(1) बीज द्वारा प्रवर्धन :- नींबू में बहुभ्रूणता पाई जाती है। अच्छे चुने हुए फलों से बीज निकालकर रोपणी (नर्सरी) में तैयार क्यारियों में लगाना चाहिए। अंकुरण के बाद सबसे कमजोर लैंगिक भ्रूण को निकाल देना चाहिए। इस तरह सारे पौधे एक समान गुण वाले हो जाते हैं।

(2) गूटी द्वार :- नींबू में गूटी द्वार प्रसारण किया जाता है। एक वर्ष पुरानी शाखा पर 2 सेमी. की दूरी में छाल निकालने के बाद ऊपरी भाग पर 5000 पी. पी.एम. इन्डोल ब्यूटेरिक अम्ल का लिनोलिक पेस्ट लगाकर स्फेग्नम मॉस को अच्छी तरह गीला करके प्लास्टिक की सीट से बांध देना चाहिए। इसमें लगभग एक माह में जड़े निकल आती है। दो माह बाद शाखा को दो बार में काट कर पौधे से अलग कर लेना चाहिए। जड़युक्त शाखाओं को रोपणी में स्थापित कर साल भर बाद मुख्य खेत में लगाना चाहिए। नींबू में गूटी बांधने का उपयुक्त समय जून-जुलाई है।

(3) कलिकायन :- राजस्थान में नींबू पर कलिकायन का उचित समय अगस्त-सितंबर माह है। लगभग एक वर्ष पुराने मूल वृंत पर अंग्रेजी के टी. आकार की काट लगाकर उन्नत किस्म की कलिका का रोपण कर प्लास्टिक की टेप से बांध देना चाहिए। लगभग एक माह में कलिका में फटाव शुरू हो जाता है।

पौधा रोपण

भूमि की 2-3 बार जुताई करके मिट्टी को समतल कर लेना चाहिए। रेखांकन करने के लिए खेत के एक किनारे से 2.5 मीटर की दूरी पर सीधी लाइन बनाकर संपूर्ण खेत में 5 मीटर की दूरी पर लाइने बनाएं। इसी प्रकार दूसरे किनारे से भी लाइने डालें। चिह्नित स्थानों पर जून माह में 60×60×60 से.मी. आकार के गड्ढे खोद कर एक माह के लिए खुला छोड़ दें। जुलाई माह में 30 किलोग्राम गोबर की खाद, 2 किलोग्राम नीम की खली, 250 ग्राम सुपर फास्फेट, 50 ग्राम मेथिल पैराथियान पाउडर मिलाकर गड्ढ़ों को भूमि से 8-10 से.मी. ऊंचाई तक भरकर भरपूर पानी दें। पानी देने के 6-7 दिन बाद उगे हुए खपरतवारों को नष्ट करके गड्ढों के मध्य भाग में पिंडी के आकार का गड्ढा बनाकर सांयकाल में पौधे का रोपण करना चाहिए। रोपण के तुरंत बाद सिंचाई करनी चाहिए। नींबू का रोपण जुलाई-अगस्त माह में करना चाहिए। फरवरी माह में भी पौधों का रोपण किया जा सकता है। इसके लिए गर्मियों में छोटे पौधों के चारों ओर टाटी लगानी चाहिए।

सिंचाई एवं जल प्रबंधन

पौधे लगाने के बाद से तीन माह तक नींबू में 3-5 दिन के अंतर पर हल्की सिंचाई करनी चाहिए। अच्छी प्रकार से जड़ स्थापित होने के बाद सर्दी के मौसम में 15-20 दिन व गर्मियों में 10-12 दिन के अंतर पर सिंचाई करनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

फलन वाले पौधों में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग पौधे के मुख्य तने से 120 से.मी. की परिधि में 15-20 से. मी. की गहराई में करना उपयुक्त रहता है। खाद के रूप में गोबर की खाद, नीम की खली, सिंगल सुपर फास्फेट तथा सूक्ष्म खनिज तत्वों का प्रयोग किया जाता है।

सूक्ष्म तत्वों की पूर्ति :- नींबू में मुख्य रूप से जिंक, बोरॉन, लोहा, तांबा, मैंग्नीज़ इत्यादि की भी आवश्यकता पड़ती है। इनकी कमी से फूलों का झड़ना, फलों का गिरना, फल का कम आना, पौधों की बढ़वार रुक जाना,

उम्र वर्षों में	गोबर की खाद (कि.ग्रा)	निम की खली (कि.ग्रा)	सिंगल सुपर फास्फेट(ग्रा)	यूरिया (ग्रा)	म्यूरेट ऑफ पोटाश (ग्रा)	सूक्ष्म तत्व मिश्रण (ग्रा)
प्रथम वर्ष	10	0.5	250	125	--	50
द्वितीय वर्ष	20	0.5	500	250		50
तृतीय वर्ष	30	1.0	750	375	200	50
चतुर्थ वर्ष	40	1.0	1000	500	200	50
पंचम वर्ष	50	1.5	1000	500	200	50
खाद देने का समय	दिसंबर माह	आधा जुन-जूलाई आधा-फल बनने पर	जनवरी	आधा जुन-जूलाई आधा-फल बनने पर	जनवरी	जनवरी

उल्टा सूखा रोग, शीर्षारंभी क्षय (डाई बैक) इत्यादि विकार पैदा हो जाते हैं। सूक्ष्म तत्वों की पूर्ति हेतु पौधों पर 2.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट, 1.5 कि.ग्रा. कॉपर सल्फेट, 1.0 कि.ग्रा. मैग्नीशियम सल्फेट, 1.0 कि.ग्रा. मैंग्नीज़ सल्फेट, फेरस सल्फेट, 1.0 कि.ग्रा. बोरिक अम्ल, 1. 0 कि.ग्रा. बुझा हुआ चूना, 4.5 कि.ग्रा. यूरिया का घोल 450 लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

निराई-गुड़ाई :- नींबू की जड़ें उथली होती हैं, अत: नींबू में गुड़ाई करते समय सदैव ध्यान रखना चाहिए कि जड़ों को किसी प्रकार की हानि न पहुंचे। वृक्षों के आसपास कभी भी खरपतवार नहीं पनपने देने चाहिए।

फूलने का समय तथा फलन :- बारहमासी नींबू में वर्ष भर फलन होता रहता है। फरवरी-मार्च में आने वाले फूलों से फल नवंबर-दिसंबर में प्राप्त होते हैं तथा यह मुख्य फसल होती है। दूसरी बार जुलाई में फूल आते हैं, जिनसे मार्च-मई में फल प्राप्त होते हैं। तीसरी बार कम मात्रा में फूल सितंबर-अक्टूबर में आते हैं, जिनसे जुलाई-अगस्त में फल प्राप्त होते हैं। नींबू में फलन का मुख्य समय फरवरी-मार्च है और नवंबर से फरवरी तक फल उपलब्ध होते हैं।

फलों की तुड़ाई तथा उपज :- नींबू के फल, पुष्पन के लगभग 6-7 माह बाद तुड़ाई के योग्य हो जाते हैं। साधारणत: जब फल का रंग पीला पड़ जाए तो फल को तोड़ लेना चाहिए। नींबू में पौधा रोपण के तीसरे वर्ष में फलन शुरू हो जाता है तथा सात वर्ष में पूर्ण उत्पादन शुरू हो जाता है। इस अवस्था में प्रति पौधा 650-1000 तक फल उत्पादित होते हैं। जिनका वजन 25-45 किलोग्राम तक होता है।

नींबू में कार्यिकी असंतुलन :

फलों का गिरना :- नींबू में अपरिपक्व फलों का गिरना एक भारी समस्या है। यह मुख्य रूप से असंतुलित नमी, हॉर्मोन के प्रभाव व प्रतिकूल पर्यावरणी परिस्थितियों के कारण होता है। फलों को गिरने से बचाने के लिए प्लनोफिक्स 5 मिली. को 15 लिटर पानी में मिलाकर 20-25 दिन के अंतर पर 3 बार फलन के समय छिडकाव करना चाहिए।

फलों का फटना :-नींबू में फल फटने की समस्या पाई जाती है। फल फटने से 10-90 प्रतिशत तक फल खराब हो जाते हैं। फल का फटना वायुमंडल में आर्द्रता के घटने-बढ़ने व बोरॉन तत्व की कमी के कारण होता है। लंबे समय तक शुष्क मौसम के बाद एकाएक आर्द्र मौसम आए तो फल फटने शुरू हो जाते हैं।

1. फलों को फटने से बचाने के लिए गर्मियों में उचित समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए।
2. फलन के समय पौधों पर 10 पी.पी.एम. जिब्रेलिक अम्ल या 4 प्रतिशत पोटेशियम सल्फेट के तीन छिड़काव अप्रैल, मई व जून माह में करना चाहिए।
3. बोरेक्स का पर्णीय छिड़काव करना चाहिए।

नींबू में लगने वाले प्रमुख कीट:

1) सिन्ट्रस साइला :- इसके अर्भक (निम्फ) कोमल पत्तियों तथा प्ररोहों से रस चूसकर उन्हें कमजोर बना देते है, फलस्वरूप पत्तियाँ मुड़कर गिर जाती हैं। इस कीट के नियंत्रण के लिए मेलाथियान 0. 05 प्रतिशत, या एन्डोसल्फान 0.05 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

2) पर्ण सुरंगी :- इस कीट की इल्लियाँ पत्तियों की निचली सतह पर टेढी-मेढी सुरंगे बनाती हैं, जिससे पत्तियाँ ऐंठ कर मुरझा जाती हैं। पौधों में बढ़वार के समय फास्फोमिडान 0.03 प्रतिशत का छिडकाव सात दिन के अंतर पर 3-4 बार करना चाहिए।

3) तना वेधक:- इसके भृंगक (ग्रब) तने में सुरंगे बना लेते हैं, जो बुरादे की भांति पदार्थ से भरी

रहती है। इसके आक्रमण से प्रभावित पौधे सूख जाते हैं। छिद्रों में मिट्टी का तेल डालकर इन्हें चिकनी मिट्टी से बंद कर देना चाहिए।

4) प्ररोह वेधक :- यह कीट रात के समय छाल को खाता है तथा दिन में प्ररोहों में बनाए गए छिद्रों में छुपा रहता है। इसका आक्रमण सितंबर-अक्टूबर में अधिक होता है। छिद्रों में मिट्टी का तेल या क्लोरोफॉर्म भरकर चिकनी मिट्टी से बंद कर देना चाहिए।

5) लेमन की तितली :- इस कीट की लार्वा (डिंभक) अवस्था हानिकारक होती है। नर्सरी अवस्था में छोटी पत्तियों को खाकर नष्ट कर देती है। रोकथाम के लिए पौधों पर 0.2 प्रतिशत थायोडान का छिड़काव करना चाहिए।

6) नींबू की सफेद मक्खी :- यह कीट शिशु तथा प्रौढ़ दोनों अवस्थाओं में पत्तियों का रस चूसते हैं जिससे पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। 0.05 प्रतिशत एन्डोसल्फॉन का छिड़काव करना चाहिए।

7) फल चूषक शलभ (मॉथ)- ये कीट नींबू के फलों का रस चूसकर बाहरी सतह को खुरदरा बना देते हैं। मैलाथियान (0.05 प्रतिशत)गुड तथा फलों के रस की गोलियाँ बनाकर फलोद्यान में स्थान-स्थान पर रख देना चाहिए।

नींबू में लगने वाले प्रमुख रोग :-

1) ट्रिसरेजा रोग :- यह रोग विषाणु द्वारा होता है। इससे प्रभावित पौधों की पत्तियाँ पीली होकर झड़ जाती हैं तथा शाखाएँ ऊपर की ओर से सूखना प्रारंभ कर देती हैं। पौधों की जड़ें सड़ जाती हैं और पौधा मर जाता है।

नियंत्रण:- स्वस्थ और प्रमाणित पौधों का रोपण करना चाहिए। प्रतिरोधी मूलवृंत जैसे रफलेमन, रंगपुर लाइम, जट्टी-खट्टी का प्रयोग करना चाहिए। रोगवाहक माहू की जातियों को नष्ट करने के लिए कीटनाशी दवाओं का छिडकाव करना चाहिए। प्रभावित पौधों को जड़ से उखाड़ कर जला देना चाहिए।

2) नींबू का कैंकर :- इस रोग में फलों पर हल्का पीला दाग दिखाई पड़ता है, जो बाद में भूरे रंग का और खुरदरा हो जाता है। फल में रस की मात्रा कम हो जाती है। रोगग्रस्त शाखाओं को काट कर जला देना चाहिए तथा बोर्डो मिश्रण (5:5:50) का एक प्रतिशत घोल या 0.03 प्रतिशत ब्लाइटॉक्स 50 का छिड़काव 2-3 बार पंद्रह दिन के अंतर पर करना चाहिए। स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट या फाइटोमाइसिन या एग्रोमाइसिन-100 के 0.05-0.1 प्रतिशत घोल के 3-4 छिड़काव करने चाहिए।

3) गोंदार्ति (गमोसिस) रोग :- रोगी वृक्षों के तनों की छालों में दरारे पड़ जाती हैं जिनमें से गोंद जैसा पदार्थ निकलता है और ऐसी छाले सूखकर गिरने लगती हैं तथा तनों में से गोंद का स्राव बाहर आने लगता है।

नियंत्रण :- प्रतिरोधी मूलवृंत जैसे ट्राइफोलिएट ऑरेन्ज, रंगपुर लाइम का चुनाव करना चाहिए। मूलवृंत पर 30 से 45 से.मी. की ऊँचाई पर कलिकायन करना चाहिए। रोगग्रस्त भाग की छाल काटकर उस पर (1:1:3) बोर्डो पेस्ट लगा देना चाहिए तथा प्रतिवर्ष वर्षा शुरू होने से पूर्व बोर्डो लेप लगाना चाहिए। पौधे के तने को सीधे पानी के संपर्क में नहीं आने देना चाहिए तथा सिंचाई जल के साथ 0.02 प्रतिशत केप्टान का घोल पौधे की जड़ों में डालना चाहिए।

4) नींबू में उल्टा सूखा रोग :- उद्यानों में ठीक ढंग से प्रबंधन नहीं करने व पोषण की कमी के कारण नींबू के पौधे ऊपर से सूखना प्रारंभ कर देते हैं।

नियंत्रण :- अच्छी जल-निकास युक्त हल्की दुमट मृदा का चुनाव करना चाहिए। उद्यानों में उचित पोषण का प्रबंध एवं सूक्ष्म तत्वों का पर्णीय छिड़काव करना चाहिए। प्रति वर्ष पौधों में 25 किलोग्राम वर्मीकम्पोस्ट+2 किलो नीम खल + 100 ग्राम रिजेट। +50 ग्राम सूक्ष्म तत्वों के मिश्रण को वर्ष में दो बार पौधों के जड़ क्षेत्र में प्रयोग करना चाहिए तथा पत्तियों पर वर्मीवास + गोमूत्र का छिडकाव करना चाहिए।

नींबू के उद्यान का आर्थिक विश्लेषण (प्रति हेक्टेयर - 400 पौधे)

1. पौधे लगाते समय का खर्च

(i) खेत की तैयारी (जुताई एवं समतलीकरण) 2500 रु.

(ii) रेखांकन, गड्ढे खोदना रु. 20/- गड्ढा 8000 रु.

(iii) गड्ढे भरना रु. 10/- गड्ढा 4000 रु.

(iv) खाद, उर्वरक, दवा आदि 400 पौधे/15 रु. 6000 रु.

(v) पौधे 450 × 15 रु. 6750 रु.

(vi) अन्य खर्च 5000 रु.

जोड़ 32250 रु.

2. पौधे लगाने से चार वर्ष तक

(i) खाद पानी व उर्वरक 10000 × 3 30000 रु.

(ii) एक आदमी की मजदूरी 50000 × 4 200000 रु.

(iii) पौध संरक्षण 5000 × 4 20000 रु.

(iv) अन्य खर्च (परिवहन तुडाई) 5000 × 4 20000 रु.

जोड़ 2,70,000 रु.

3. उद्यान से प्राप्त आय

(i) प्रथम वर्ष - अंत शस्य से 45000-50000 रु.

(ii) द्वितीय वर्ष - अंत शस्य से 45000-50000 रु.

(iii) तृतीय वर्ष- 400 पौधे (400×10 कि.ग्रा/पौधा) 4000×25 = 1,00,000रु.

(iv) चतुर्थ वर्ष- 400 पौधे (400×20 कि.ग्रा/पौधा) 8000×25= 2,00,000 रु.

(v) पंचम वर्ष- 400 पौधे (400×40 कि.ग्रा/पौधा) 16000×25 = 4,00,000 रु.

शुद्ध लाभ प्रति वर्ष चतुर्थ वर्ष के बाद- 4,00,000-70,000 = 3,30,000

नींबू के बगीचे की हरियाली : परिवार में खुशहाली

सोहन सिंह सिरोही जिले के जोयला गांव का रहने वाला एक प्रगतिशील किसान है। लगातार गिरते जलस्तर एवं वर्षा की कमी के कारण वर्ष 2005 में सोहन सिंह के पास जमीन में कपास, अरंडी, सरसों, मक्का व ग्वार उगाने के लिए पर्याप्त पानी नहीं रहा। इस प्रकार की स्थिति होने पर सोहन सिंह ने अपने खेत पर लगभग दो हेक्टेयर क्षेत्रफल में नींबू की बारहमासी किस्म के 1000 पौधे लगाए जिनसे पानी की आवश्यकता कम हुई एवं आज बगीचा पूर्ण विकसित है जिससे प्रतिवर्ष 3.5-4.0 लाख रुपए की आमदनी हो जाती है। बगीचे की अन्य फसलों की तरह ज्यादा पानी, उर्वरक, ट्रैक्टर, मजदूर एवं रसायनों की आवश्यकता नहीं होती है। अत: संपूर्ण साधनों से बाकी बची हुई जमीन पर भी अच्छी पैदावार हो रही है। इस प्रकार नींबू के बगीचे से प्राप्त आमदनी से सोहन सिंह काफी खुशहाल नजर आ रहे हैं। गांव में किसान-क्लब का गठन कर बागवानी को बढ़ावा देने में सहयोग भी कर रहे हैं।

किसान की जुबानी- अन्य फसलों के उत्पादन में अधिक रसायनों एवं पानी की अधिक खपत होती है अत: नींबू का बगीचा लगया। शुरू में काफी परेशानी आई परंतु आज मेरा बगीचा पूर्ण विकसित है व प्रति वर्ष 3.5-40 लाख रुपए का शुद्ध लाभ प्राप्त हो जाता है। बगीचे की हरियाली से परिवार में खुशहाली आई है। आज फल वृक्षों का रोपण हमारी आवश्यकता भी है। सभी किसानों को बागवानी पर ध्यान देना चाहिए।

अधिक बागवानी फसलों की पैदावार एवं इसके लिए सरकार से मिलने वाले लाभों को जानने के लिए राष्ट्रीय बागवानी मिशन कार्यालय से संपर्क किया जा सकता है।

❑

2

ऊर्जा-संरक्षण की बढ़ती आवश्यकता

डॉ. दिनेश मणि

आर्थिक विकास के लिए ऊर्जा एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। विकास की प्रत्येक स्थिति में किसी भी तरह से ऊर्जा पर निर्भरता बनी रहती है। प्रत्येक क्षेत्र-चाहे वह कृषि उत्पादन में सुधार हेतु उद्योगों को चलाने अथवा दैनिक जीवनस्तर में सुधार के लिए हो, सबसे बड़ी मात्रा में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ऊर्जा को आजकल दो भागों में विभाजित करके देखा जाने लगा है यथा-परंपरागत ऊर्जा तथा गैर-परंपरागत ऊर्जा। परंपरागत ऊर्जा पर हमारी निर्भरता सदियों से रही है लेकिन आजकल सिमटते संसाधनों को देखते हुए परंपरागत क्षेत्र के बजाय गैर-परंपरागत ऊर्जा पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। वर्तमान में सरकार इस क्षेत्र पर सभी तरह से प्रोत्साहन देने का प्रयास कर रही है।

ग्रामीण विकास से संबंधित कार्यों के प्रकार और उनका दायरा इतना बढ़ गया है कि उन सबको सुचारु रूप से संचालित करने के लिए अब पहले की अपेक्षा कहीं अधिक ऊर्जा की आवश्यकता है। परंतु विडंबना यह है कि ऊर्जा की अत्यधिक जरूरत वाले ऐसे दौर में ऊर्जा निरंतर अपर्याप्त पड़ती जा रही है। ऐसे में अन्य स्रोतों से ऊर्जा प्राप्त करना जरूरी समझा जाने लगा है-क्योंकि न केवल ग्रामीण विकास के कार्य बल्कि गांवों के रोजमर्रा के कामकाज भी रोके अथवा विलंबित नहीं किए जा सकते। जब मौजूदा परंपरागत स्रोत से मिलने वाली ऊर्जा काफी न हो तो अपारंपरिक स्रोत ही इस संबंध में आशा की किरण है।

यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि विकास प्रक्रिया आरंभ करने और उसे जारी रखने के लिए ऊर्जा अत्यंत महत्वपूर्ण साधन है। ऊर्जा की माँग और पूर्ति भारी अंतर होने के कारण भारत जैसे विकासशील देश के लिए ऊर्जा उत्पादन के साथ-साथ ऊर्जा-संरक्षण की आवश्यकता अत्यंत प्रासंगिक है।

खेती से लेकर उद्योग स्थापित करने तक की दिशा में जैसे-जैसे प्रगति होती जा रही है, ऊर्जा के उपयोग में भी बढ़ोत्तरी होती जा रही है। फलस्वरूप आज विश्व के अधिकांश विकसित और विकासशील देश, ऊर्जा की कमी से प्रभावित हो रहे हैं। ऊर्जा के सीमित साधनों तथा इनकी निरंतर बढ़ती आवश्यकता को देखते हुए विश्व के समस्त देशों का ध्यान संभावित ''ऊर्जा-संकट'' की ओर आकृष्ट हुआ है।

भारत जैसे विकासशील देश के आर्थिक तथा सामाजिक स्तर को सुधारने के तरीकों में से प्रमुख हैं-सौर ऊर्जा का प्रत्यक्ष प्रयोग। सूर्य की विकिरित ऊष्मा से यांत्रिक तथा वैद्युत शक्ति प्राप्त करना तथा वाष्प इंजन चलाना तकनीकी दृष्टि से तो संभव है किंतु ये सारी विधियां सिर्फ भविष्य की बातें है। फिलहाल ऐसा संभव नहीं है। एक प्रभावी यांत्रिक तंत्र विकसित करने में धन से भी अधिक बड़ी समस्या ऊर्जा भंडारण की है। यदि तत्काल ऊर्जा का उपयोग न करना हो तो इसे पृथ्वी, पानी या अन्य किसी माध्यम में संचित रखना अति आवश्यक है।

ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों में जैवमात्रा (बायोमास) ऊर्जा का प्रयोग नया नहीं है, किंतु इस ओर वैज्ञानिकों नए सिरे से आकर्षित होने का कारण यह है कि इस स्रोत की निरंतरता बनी रहती है तथा इसका पुनर्नवीकरण भी संभव है। ऊर्जा की पूर्ति की दृष्टि से लगाई जाने वाली फसलों के लिए दो प्रमुख निर्णायक शर्तें हैं: उनकी शीघ्र वृद्धि क्षमता और अधिकतम उत्पादन। बायोमास की अनेक संभावनाओं को पहचान कर उनके लिए नई तकनीकें और उपयोग की विधियाँ ढूँढ़ी जा चुकी हैं। बायोमास में अंतर्निहित संपूर्ण ऊर्जा-शक्ति यदि उपलब्ध साधनों से सफतापूर्वक प्रयोग में लाई जा सके तो वह निकट भविष्य में हमारी ऊर्जा संबंधी मांगों के अधिकांश प्रतिशत (57प्रतिशत) की पूर्ति करने में समर्थ सिद्ध होगी।

पशुओं के गोबर, कृषि तथा उद्योग के अपशिष्ट एवं घरेलू कूड़े-कचरे से बायोगैस बनाकर ऊर्जा प्राप्त की जाती है। आज के विकसित संयंत्रों में जलकुंभी, समुद्री शैवाल, सुअरबाड़ा और मुर्गीखानों का कचरा और यहां तक कि मानव मल का इस्तेमाल भी बायोगैस बनाने में किया जा रहा है।

पवन वेग में ऊर्जा समाई होती है। पवन चक्कियों द्वारा इसी ऊर्जा को प्राप्त करके अन्य प्रकार की ऊर्जाओं में परिवर्तित कर लिया जाता है। पवन ऊर्जा के पक्ष में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ऊर्जा का यह साधन सबसे सस्ता, सुलभ और प्रदूषण रहित है। हमारे देश में कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, राजस्थान और हिमालय के पर्वतीय प्रदेशों में पवन ऊर्जा के प्रयोग की असीमित संभावनाएँ हैं।

स्वयं समुद्र में ऊर्जा का विशाल भंडार समाया हुआ है। विकसित तकनीकों द्वारा इस ऊर्जा का उपयोग किया जा रहा है। समुद्र ऊष्मा ऊर्जा रूपांतरण (ओटेक) द्वारा समुद्र की विभिन्न परतों के बीच के प्राकृतिक तापांतर का उपयोग कर विद्युत उत्पादन किया जा रहा है।

हमारे देश में राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान द्वारा इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी जैसे कुछ क्षेत्र ओटेक संयंत्रों की स्थापना के लिए बहुत ही उपयुक्त हैं। **ज्वारा-भाटा से विद्युत ऊर्जा** के उत्पादन हेतु विशेष रूप से निर्मित संयंत्रों का उपयोग किया जाता है क्योंकि ज्वार-भाटा में वेग की दिशा तथा क्षेत्र आदि का ध्यान रखना अति आवश्यक होता है।

ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों में **भू-तापीय ऊर्जा** विशेष रूप से उल्लेखनीय है। साधारणतया भू-तापीय ऊर्जा से आशय, पृथ्वी के गर्भ में छिपी उस ऊर्जा से है जो सूखी गर्म चट्टानों, ज्वालामुखियों, गर्म जल स्रोतों और तापकुंडों में संचित है। हमारे देश में भू-तापीय ऊर्जा के भंडार उत्तर पश्चिम हिमालय, पश्चिम घाट, नर्मदा, सोन घाटी और दामोदर घाटी के क्षेत्रों में स्थित है।

आजकल **परमाणु ऊर्जा** पर आधारित विद्युत गृह स्थापित किए जा रहे हैं जो ऊर्जा के विकल्प के रूप में महत्वपूर्ण हैं। परमाणु ऊर्जा यूरेनियम, थोरियम, प्लूटोनियम आदि रेडियो सक्रिय तत्वों के नाभिकीय विघटन से प्राप्त होती है।

हाइड्रोजन एक बहुत अच्छा स्रोत हो सकता है क्योंकि यह पृथ्वी पर जल के रूप में असीमित मात्रा में उपलब्ध है। इस जल से असीमित मात्रा में हाइड्रोजन उत्पादित की जा सकती है। हाइड्रोजन को यदि भविष्य की ऊर्जा कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। निकट भविष्य में जल से हाइड्रोजन बनाने की कुछ सरल तकनीकें खोजी जाएंगी और तब हाइड्रोजन एक सस्ती एवं प्रदूषणरहित ऊर्जा के रूप में प्रचलित हो जाएंगी।

ऊर्जा-संरक्षण का अभिप्राय है ऊर्जा के उपलब्ध साधनों का मितव्ययिता से उपयोग करना। ऊर्जा स्रोत सीमित है लेकिन हमारी आवश्यकताएँ असीमित हैं। मानव की प्रत्येक प्रक्रिया ऊर्जा-खपत पर आधारित है जिसका मूल्य अंतरराष्ट्रीय या राष्ट्रीय बाजार में खनिज तेल या कोयले की निरंतर मांग के आधार पर बढ़ता है और बढ़ता ही जा रहा है।

ऊर्जा समस्या का समाधान ऊर्जा के नए-नए वैकल्पिक साधनों की खोज से तो समाधान होगा ही, फिर भी यदि हम उपलब्ध ऊर्जा का संरक्षण कर सकें तो यह ''ऊर्जा बचत'' हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। ऊर्जा संरक्षण के अंतर्गत निम्नलिखित बातें सम्मिलित हैं -

1. पूर्व नियोजित योजनाओं को कार्यान्वित करते समय ऊर्जा की बचत करना जैसे कार्यालय भवनों में एयर कंडीशनर कम करना, धीमी गति से वाहन चलाना आदि।

2. पूर्व स्वीकृत योजनाओं को उसी प्रकार या उससे बेहतर ढंग से कार्यान्वित करते हुए ऊर्जा उपयोग की कार्यक्षमता को बढ़ाना।

3. यांत्रिक इकाइयों, मशीनों तथा उनकी क्रियाओं को चालू रखने के लिए कम से कम ऊर्जा से अधिक से अधिक कार्यक्षमता प्राप्त की जा सकती है; जैसे, क्या भट्ठियों में जलाए जाने वाले कोयले के प्रत्येक कण से प्राप्त ऊर्जा का हम सही उपयोग कर पाते हैं या नहीं ?

4. ऊर्जा की खपत करने वाले वर्तमान उपस्करों का कार्यक्षमता-स्तर वर्तमान ऊर्जा-मूल्यों के अनुरूप नहीं हैं। यद्यपि इनका आपरिवर्तन आर्थिक दृष्टि से आकर्षक है किंतु नए व अधिक कार्यक्षम उपस्करों से ही ऊर्जा की कार्यक्षमता में अत्यधिक बढ़ोतरी हो सकेगी।

5. उद्योगों में ऊर्जा बचत की ओर प्रबंधकों ने बहुत कम ध्यान दिया है जबकि औद्योगिक क्षेत्रों में व्यापारिक ऊर्जा के अधिकतम भाग का उपयोग किया जाता है। देश में ऊर्जा संसाधनों की सीमित उपलब्धि एवं भविष्य में संभावित ऊर्जा संकट को ध्यान में रखते हुए यह अति आवश्यक है कि सरकार एवं उद्योगपति इस विषय पर गंभीरता से विचार करें एवं ऐसी नीति निर्धारित करें जिससे देश में उपलब्ध ऊर्जा संसाधनों (परंपरागत एवं गैर-परंपरागत) का उचित उपयोग हो सके।

ऊर्जा स्रोतों का सही उपयोग

(1) कोयले द्वारा ऊर्जा उत्पादन में पीट कोयले का अधिकता से उपयोग हो।

(2) ऊर्जा के घरेलू साधनों का ज्यादा से ज्यादा उपयोग हो।

(3) वैकल्पिक ऊर्जा-साधनों जैसे सौर, पवन, ज्वारीय और भू-तापीय ऊर्जा का उपयोग किया जाए।

आजकल ''ऊर्जा ग्राम परियोजना'' ऊर्जा संरक्षण के परिप्रेक्ष्य में कंपनी सिद्ध हुई है। ''ऊर्जा ग्राम'' वह ग्राम कहलाता है जिसमें लोगों की ऊर्जा संबंधी अधिकांश आवश्यकता को स्थानीय उपलब्ध नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का अधिकाधिक उपयोग करके पूरा करने का प्रयास किया जाता है। इस परियोजना के अंतर्गत गांव की अधिकांश ऊर्जा संबंधी मांगों को पूरा करने के लिए विभिन्न ऊर्जा-उत्पादक उपकरणों एवं प्रणालियों के मिश्रित रूप पर विचार किया जाता है।

वस्तुत: ऊर्जा विकास एक सतत प्रक्रिया है जिसकी ग्रामीण स्तर पर सभी विकास योजनाओं से पारस्परिक संबंद्धता है। आने वाले समय में यह सभी ऊर्जा की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सस्ता विकल्प भी बन सकता है।

कई अध्ययनों के अनुसार औद्योगिक रूप से उन्नत देशों के मुकाबले भारत में ऊर्जा उपयोग की दक्षता और साथ ही तेल उपयोग की दक्षता बहुत कम है, अत: ऊर्जा संरक्षण की संभावनाएं विभिन्न क्षेत्रों में 20 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक है। सीमित ऊर्जा संसाधनों तथा उपयोग की निम्न दक्षता को देखते हुए संरक्षण की निम्नलिखित चुनौतियों का सामना करना है :

(1) ऊर्जा का दक्ष प्रयोग तथा संरक्षण करना,

(2) तेल पर निर्भरता को घटाना तथा तेल की जगह गैस का उपयोग बढ़ाना,

(3) व्यापारिक ऊर्जा की मांग का प्रबंधन सख्ती से करना,

(4) पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित करना, तथा

(5) वैकल्पिक तथा गैर परंपरागत ऊर्जा संसाधनों का विकास करना।

उपर्युक्त सभी कार्य परस्पर एक दूसरे से जुड़े हुए हैं जिनके लिए सतत एवं सामूहिक प्रयास करने होंगे ताकि वांछित लक्ष्य प्राप्त हो सके।

उपलब्धियां

ऊर्जा के रूप में तेल के संरक्षण कार्यक्रमों में पेट्रोलियम संरक्षण अनुसंधान संस्था (पीसीआरए) को आशातीत सफलताएं मिली हैं और भावी संभावनाएँ विकसित हुई हैं। अदक्ष बायलरों की जगह 360 दक्ष बायलर लगाए गए हैं। विभिन्न औद्योगिक इकाइयों में 4000 से ज्यादा सुधरे हुए दक्ष ज्वालक (बर्नर) लगाए गए हैं जिनसे तेल की 10-15 फीसदी बचत होती है। परिवहन क्षेत्र में संरक्षण प्रयासों से गत 10 वर्षों में औसत कि.मी. प्रति लिटर के रूप में 4.01 से 4.41 की प्रगति हुई है। 5200 सिंचाई पंपों को सुधार कर दक्ष बनाया गया है जिससे 30 प्रतिशत तेल की बचत की संभावना है। उपर्युक्त संरक्षण कार्य प्रगति की दिशा में अग्रसर हैं। विविध स्तरों पर औद्योगिक कर्मियों को प्रशिक्षण देना पी सी आर ए द्वारा तेल संरक्षण हेतु योगदान है।

अनुसंधान तथा विकास

प्रौद्योगिकी के वाणिज्यीकरण और विकास की आर्थिक प्रगति में अनुसंधान और विकास की सुनिश्चित भूमिका है, अत: विभिन्न अनुसंधान एवं विकास संगठनों, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद की प्रयोगशालाओं, तकनीकी संस्थानों आदि के सहयोग से पी सी आर ए द्वारा अनुसंधान एवं विकास के प्रयासों को बढ़ावा देना वांछनीय होगा। देश में ईंधन संरक्षण हेतु कुल तकनीकी विशेषज्ञता विकसित करना उपर्युक्त पहल हेतु एक अन्य क्षेत्र है।

जागरूकता अभियान

ऊर्जा संरक्षण पर जागरूकता अभियान चलाया जाना चाहिए जिसके अंतर्गत संगोष्ठियों, विशिष्ट अध्ययनों, प्रकाशनों, पुरस्कारों, आदि के द्वारा इस कार्य को अभिप्रेरित तथा प्रोन्नत किया जाना चाहिए।

सॉफ्टवेयर का विकास

ऊर्जा संबंधी डाटाबेस के विकास हेतु कंप्यूटर के सॉफ्टवेयर निम्नलिखित प्रयोजनों हेतु विकसित किए जा रहे हैं :

1. तेल संरक्षण के विशिष्ट मानकों का विकास, लक्ष्य निर्धारण एवं ''बैच मार्किंग'',
2. प्रशिक्षण निर्देशों का विकास, तथा
3. अभियंताओं तथा प्रशिक्षण प्रबंधकों हेतु प्रशिक्षण के विषय क्षेत्र।

औद्योगिक कार्मिकों हेतु कार्यक्रम

ऊर्जा प्रबंधकों, संयंत्र अभियंताओं तथा प्रचालकों हेतु उपयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन उपरोक्त कार्यक्रम के अंतर्गत आते हैं।

ऊर्जा संरक्षण : एक संस्कृति, एक स्वभाव

तेल पर भारी दबाव और संसाधनों की कमी से निपटने के लिए देश में ऊर्जा संरक्षण तथा ऊर्जा खपत दक्षता में वृद्धि हेतु सतत सुनिश्चित प्रयासों की जरूरत है। ऊर्जा खपत दक्षता में वृद्धि तथा ऊर्जा खपत में कमी करने के विषय में एक समन्वित कार्यक्रम अपेक्षित है। ऊर्जा और खासकर तेल पर दबाव घटाने के लिए नई नीतियों और संस्थागत ढांचों की जरूरत है। नीतियों और उनके कार्यान्वयन के अतिरिक्त ऊर्जा संरक्षण को अपनी संस्कृति व स्वभाव के रूप में अपनाना होगा। ❑

3

2011 में भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

सन् 2011 में भौतिकी के नोबेल पुरस्कार हेतु तीन वैज्ञानिकों का चयन किया- (i) ब्रियान पी. श्मिट (ii) ऐडम गाइरीस तथा (iii) साउल पर्लमुटेर। ब्रियान पी. श्मिट का जन्म संयुक्त राज्य अमेरिका के मिसौला माउंटेन नामक स्थान पर 24 फरवरी 1967 को हुआ था। कुछ समय बाद उनके माता पिता अलास्का (संयुक्त राज्य अमेरिका) में जाकर रहने लगे। ब्रियान जी. श्मिट ने ऐरीजोना विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री प्राप्त की। फिर पीएच. डी. की डिग्री उन्होनें हार्वर्ड विश्व विद्यालय से प्राप्त की। हार्वर्ड विश्व विद्यालय में ही उनका परिचय आस्ट्रेलिया निवासी जेनिफर गॉर्डन नामक लडकी से हुआ। शीघ्र ही दोनों विवाह के बंधन में बंध गये। विवाह के बाद सन् 1994 में वे दोनों आस्ट्रेलिया चले गए तथा कैनबरा नामक नगर में रहने लगे। ब्रियान जी श्मिट अभी आस्ट्रेलिया नेशनल यूनिवर्सिटी में कार्यरत हैं। ऐडम गाइरीस का जन्म संयुक्त राज्य अमेरिका के वाशिंगटन में दिसंबर 1969 में हुआ था। इन्होंने मैसाचुसेट्स इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से स्नातक, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से एम. ए. तथा हॉर्वर्ड विश्वविद्यालय से पी एच.डी. की डिग्री प्राप्त की। अभी वे जॉन हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी के 'स्पेस टेलिस्कोप साइंस इंस्टिच्यूट' में कार्यरत हैं। साऊल पर्लमुटेर का जन्म संयुक्त राज्य अमेरिका के शैम्पेन अरबाना में सन् 1959 में हुआ था। उन्होंने सन् 1986 में कैलिफौर्निया विश्व विद्यालय से पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त की। अभी वे यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफौर्निया के 'लॉरेन्स बर्कले नेशनल लेबोरेटरी' में कार्यरत हैं।

उपर्युक्त वैज्ञानिकों को भौतिकी का नोबेल पुरस्कार इस खोज के लिए दिया गया है कि ब्रह्मांड प्रसार की गति बढ़ती जा रही है। इस कार्य के लिए इन वैज्ञानिकों ने सुपरनोवा के अध्ययन का सहारा लिया। अब प्रश्न उठता है कि सुपरनोवा क्या है ? तारे के जीवन का अंतिम चरण सुपरनोवा अवस्था होती है। इस अवस्था में किसी भी तारे के आंतरिक भाग में भयंकर शक्तिशाली तथा प्रलयकारी विस्फोट होता है। इस प्रकार का विस्फोट हजारों मेगाटन क्षमता वाले परमाणु बम के विस्फोट से भी अधिक शक्तिशाली तथा विनाशकारी होता है। इस प्रकार के विस्फोट के कारण वह तारा असंख्य टुकडों में टूट कर अंतरातारकीय अंतरिक्ष में पूरी तरह बिखर जाता है। जब इस प्रकार का विस्फोट होता है, उस समय उस तारे की चमक हमारे सूर्य की चमक की तुलना में लाखों गुना अधिक दिखाई पड़ती है। वैज्ञानिकों के मतानुसार एक सुपरनोवा से उत्पन्न प्रकाश संपूर्ण मंदाकिनी (गैलेक्सी) द्वारा उत्पन्न प्रकाश के बराबर होता है।

वैज्ञानिकों ने शुरू-शुरू में सुपरनोवाओं को उनमें हाइड्रोजन की उपस्थिति के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया था। बाद में पहले वर्ग के सुपरनोवा को 1ए तथा 1 बी नामक दो श्रेणियों में विभाजित किया गया। वस्तुत: कोई भी सुपरनोवा श्वेत वामन (ह्वाइट ड्वार्फ) तारे में विस्फोट के कारण उत्पन्न होता है। सुपरनोवा को 1ए तथा 1 बी श्रेणियों में इस आधार पर विभाजित किया गया है कि वह किस प्रकार के श्वेत वामन तारे के विस्फोट से उत्पन्न हुआ है। उपर्युक्त

5

जैव विविधता संरक्षण

डॉ. ए. के. चतुर्वेदी

पृथ्वी पर जीवन में भिन्नता को जैव विविधता (बायोडाइवर्सिटी) कहते हैं। वनस्पति, जीव-जंतु सूक्ष्मजीव (माइक्रोऑरगैनिज्म) जैसे जीवाणु, विषाणु में जीवन होता है। इन सबके जीवन में विविधता पाई जाती है। कई नई जातियां उत्पन्न हो जाती है। इसे जैव-विविधता कहते हैं। वनस्पतियां ,और जीव-जंतु आपस में सामंजस्य स्थापित करते हैं। इसे परिस्थितिक तंत्र (ईको सिस्टम)या पारितंत्र कहते हैं जब तक पारितंत्र सामान्य रूप में रहता है जीवन चलता है। परंतु जब पारितंत्र सामान्य नहीं होता है, तो जीवन अवरुद्ध हो जाता है।

हम जीवन भर मकानों, ऑफिसों, कारखानों में रहते और काम करते हैं। मोटर-साइकिल, कार, एरोप्लेन का उपयोग करते हैं। इनकी गैसों आदी से कृत्रिम पर्यावरण उत्पन्न होता है। यह स्थिति हमें प्रकृति के पास आने नहीं देती है। यह भ्रम भी उत्पन्न होता है कि हम अपना जीवन प्रकृति से दूर रहकर भी जी सकते हैं। इतना ही नहीं प्रकृति को अपने वश में कर सकते हैं। प्रकृति को अपने अनुरूप बदल सकते हैं। लेकिन यह धारणा सत्य नहीं है। हम भोजन, वायु, जल तथा कुछ अन्य आवश्यक तत्वों के लिए प्रकृति पर निर्भर रहते हैं। इनके बिना जीवन संभव नहीं है।

उत्कृष्ट जातियां और वनस्पतियां हमें खाना, लकड़ी, धागा, ऊर्जा, दवाईयां, उद्योग के लिए रसायन देती हैं। प्राकृतिक क्रियाओं के संपादन में जैव विविधता महत्वपूर्ण योगदान देती है। प्रकृति में जल और वायु का शुद्ध होना, परागण की क्रिया का होना, पेड़ों द्वारा कार्बनडाईऑक्साइड को सोखना, तथा ऑक्सीजन उत्सर्जित करना, बाढ़ और भूस्खलन पर नियंत्रण करना, मनुष्य और उद्योगों के अपशिष्टों को शुद्ध कराना, प्राकृतिक पीडकों पर नियंत्रण करना आदि क्रियाओं के संपादन में जैव विविधता महत्वपूर्ण योगदान देती है। वनस्पति व जीव का शुद्धीकरण, पुन: चक्रण क्रियाओं को संपादित करता है। पारिस्थितिक तंत्र प्रकृति में सामंजस्य स्थापित करता है। अत: मानव का अस्तित्व तथा स्वास्थ्य पर्यावरण की जैव विविधता पर निर्भर करता है।

जंगलों के पेड़-पौधे, जीव-जंतु सुंदरता, आश्चर्य और खुशी के साधन है। सभ्यता और संस्कृति जंगलों की वस्तुओं पर निर्भर करती है। प्रत्येक जाति आनुवंशिक सूचना और पृथ्वी पर हुए पर्यावरणीय परिवर्तन और उनके कारण हुए परिवर्तनों की सूचना देती है। मनुष्य के जीवित रहने के लिए जैव विविधता आवश्यक है। प्रत्येक जाति का विकास कैसे हुआ है, वह कैसे कार्य करती है भविष्य में किस प्रकार का विकास होगा, यह सब जानकारी जैव विविधता के अध्ययन से प्राप्त होती है। विश्व में मानव उद्भव की पहचान जंगलों में विभिन्न जानवरों की

जातियों के आधार पर होती है।

जैव विविधता का सौंदर्यबोधपरक मूल्य है, जैसे पारिपर्यटन के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की चिड़ियों को देखना, जंगल में जीवन जीना, बागवानी, जानवरों को पालतू बनाना आदि। मनुष्य के विकास में जैव विविधता का महत्वपूर्ण योगदान है। प्रकृति के वरदान के फलस्वरूप भारत जैव समृद्धता से भरा कृषिप्रधान राष्ट्र है। प्रदेशों की विशिष्ट जलवायु होती है। इसे जीवोम या बायोम कहते हैं। प्रत्येक बायोम में विशिष्ट जलवायु के अनुरूप समान जीवन प्रकृति में पाया जाता है। भारत में विभिन्न जलवायु पाई जाती है जैसे उष्णकटिबंधी, शीतोष्ण, मरुस्थली, कच्छीय आदि । इनमें जैव संपदाओं के असीमित भंडार हैं। भारतीय पर्वत श्रृंखलाओं की ऊंचाई में भिन्नता के कारण भारत जैव समृद्ध राष्ट्र है।

विश्व में वनस्पति-संपदा में ब्राजील के उपरांत भारत है। भारत में पाई जाने वाली वनस्पतियों के अनेक बड़े-बड़े परिवार हैं। कुलों की विविधतापूर्ण हजारों शाखाएं हैं। भारत में जैव समृद्धता के मध्य विविधता भी है। जंगल जैव-संपदा के भंडार हैं। वनस्पतियां जैविक विविधता की स्रोत हैं। जैविक औषधियां अवांछनीय जीवाणुओं की वृद्धि को अवरुद्ध करती हैं और साथ ही शरीर की प्रतिरोधक क्षमता की भी वृद्धि करती हैं। इससे स्वास्थ्य लाभ मिलता है। इसी आधार पर आयुर्वेद पद्धति का विकास हुआ है। विश्व में आयुर्वेद पद्धति एक प्रमुख उपचार पद्धति है।

वायुमंडल में विभिन्न गैसें और जल-वाष्प कण होते हैं। वनस्पतियां प्रकाश-संश्लेषण द्वारा कार्बन डाईआक्साइड और जल, सौर ऊर्जा से मिलकर ऑक्सीजन और कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करती है। जिससे जीवन चलता है। वनस्पतियां अपने पोषण का 10 प्रतिशत भाग मृदा से प्राप्त करती हैं। अन्य आवश्यकताओं के लिए वायुमंडल पर निर्भर रहती हैं। वनस्पतियां ऑक्सीजन का निर्माण करती हैं जो जीवों के जीवन के लिए आवश्यक है।

वनस्पतियों की उपस्थिति मृदा को उपजाऊ बनाने में सहायक है। साथ ही यह मृदा कटाव तथा रेगिस्तान के विस्तार को नियंत्रित करती है। पेड-पौधे अपनी जड़ों के विस्तार से मिट्टी में नमी और भूमिगत जल भंडारों के भरण का कार्य भी करते हैं। जल की उपस्थिति ताप वृद्धि को भी कम करने में सहायक है।

मानव जाति का अस्तित्व, स्वास्थ्य, पर्यावरण जैव-विविधता पर ही निर्भर है। वनस्पतियां वाष्पोत्सर्जन द्वारा वायुमंडल में जल-स्तर बनाए रखती हैं। वनस्पतियां और पर्यावरण मिलकर विकास तथा अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखते हैं। जैव विविधता में जलवायु की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। समय के अंतराल पर जलवायु-परिवर्तन दोलायमान रहा है। फलस्वरूप जीवों की विकास-क्रिया प्रभावित होती है। जीवों को विशिष्ट जलवायु परिवेश की आवश्यकता होती है, जिसके प्रति वे संवेदनशील होते हैं। बदलती जलवायु, स्थानीय विपरीत पारिस्थितिकीय परिवर्तन बहुत से जीवों के जीवित रहने की संभावना को कम कर देते हैं। धीरे-धीरे कुछ जातियां लुप्त हो जाती हैं। एक जाति की वनस्पति के लुप्त होने का प्रभाव उस पर आश्रित जीव-जंतुओं पर भी पड़ता है। इस कारण संरक्षण आवश्यक है।

शहरीकरण, औद्योगिकीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधनों का दोहन तीव्र गति से हो रहा है। जंगल समाप्त हो रहे हैं। जैव विविधता का ह्रास हो रहा है। पर्यावरण भी प्रभावित हो रहा है। जीवन जीना कठिन हो गया है। जैव विविधता एवं पर्यावरण में अन्योन्य संबंध है। जैव-विविधता का संरक्षण करना होगा, तभी मानव जीवित रह सकेंगे। प्रत्येक जाति, वर्ग का अध्ययन, उनका जीवन, जीवन का विकास और भविष्य में कैसा जीवन होगा, इस ओर इंगित करते हैं।

जंगल, पार्क, मरूभूमि, तालाब व अन्य जलीय वातावरण में जाति तथा पारितिंत्र, जैवविविधता का निर्माण करते हैं। वहीं आजकल जनसंख्या विस्फोट और आर्थिक विकास की अंधी दौड के कारण जैव विविधता पर दबाव है। जैव-विविधता के व्यापारिक उपयोग से अत्यधिक दोहन और विनाश होगा। जैव-विविधता की सुरक्षा और पारिस्थितिकी तंत्र की पवित्रता का अर्थ है जंगलों को सुरक्षा प्रदान करना।

हमें वनों, उपवनों, पार्कों की आवश्यकता है जहां पर प्रकृति की छटा हो, जिससे हमारा मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहे। ध्वनि, वायु, जल प्रदूषण से दूर रहें। प्रत्येक जाति से आनुवंशिक जानकारी प्राप्त होती है। जिससे हमें पृथ्वी पर हजारों सालों में परिस्थितिवश अनुरूप बनने में सहायता मिलती है। जैव-विविधता अनिष्टकारी विपत्ति के विरुद्ध प्राकृतिक जीवन की सुरक्षा है।

जैव विविधता की सुरक्षा करने पर 1. जंगलों की सुरक्षा, जंगलों के जीवन की सुरक्षा 2. लुप्त होने वाली प्रजातियों की सुरक्षा, 3. पारिस्थितिक तंत्र और विभिन्न क्षेत्रों की जैवविविधता सुरक्षित रहेगी। प्रजातियों व कुछ जातियों के लुप्त होने से जैव विविधता की हानि होगी। इसके मुख्य कारण 1. स्वाभाविक निवास की हानि और विखंडन, 2. बाहरी जातियों का आक्रमण, 3. विदेशी जातियों का प्रवेश, 4. अत्यधिक दोहन, 5. मृदा, जल, तथा वायु का प्रदूषण, 6. अत्यधिक कृषि, 7. एक ही प्रकार की सभ्यता का बढ़ना, मनुष्यों के कार्य कलापों के कारण बहुत जातियां लुप्त हो गई है। लुप्त होने की गति तेजी से बढ़ रही है।

वैश्विक उष्मण के कारण गर्मी में अधिक वृद्धि होती जा रही है। साथ ही कभी बाढ़, कभी सूखा होने से पारितंत्र में परिवर्तन हो रहे है। पर्यावरण भी प्रदूषित हो रहा है। वनस्पति व जीवों की जातियां लुप्त हो रही हैं।

पृथ्वी पर जातियों की अनुमानित संख्या 5 मिलियन से 50 मिलियन है। मनुष्य के कार्यों के कारण जातियां लुप्त हो रही है और लुप्त होने की गति भी तेजी से बढ़ रही है। ऐसा अनुमान है कि प्रतिवर्ष 14000 से 40000 जातियां नष्ट होती है। 2000 से प्रतिवर्ष 6 मिलियन हेक्टेयर जंगल समाप्त हो रहे हैं।

वैश्विक उष्मण के बढ़ते प्रभाव से जल, वायु, मृदा प्रदूषित हो रही हैं, जिससे वातावरण प्रभावित हो रहा है। जातियों के स्वभाव बदल रहे हैं। पर्याप्त जीवन सुविधाएं नहीं मिलने के कारण उनका जीवन समाप्त हो रहा है। जनसंख्या विस्फोट से शहरीकरण तथा औद्योगिकीकरण तेजी से हो रहा है। प्राकृतिक सुविधाएं कम हो रही है। जिससे पौधों, जीवों की संख्या कम हो रही है। जाति, प्रजातियों के लुप्त होने से जैव विविधता एवं पारिस्थितिकी तंत्र का ह्रास तथा परिवर्तन हो जाता है।

जैव विविधता में तेजी से कमी होने के कारण मनुष्य का अस्तित्व भी खतरे में हो गया है। इससे बचने के लिए अंतरराष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (इंटरनेशनल यूनियन फॉर कन्जरवेशन ऑफ नेचर ने 2001 में अंतराष्ट्रीय जैव विविधता वर्ष मनाया था। उक्त संघ ने कहा है कि जैव विविधता का ह्रास हो रहा है जिससे पेड़ पौधों, जीव जंतुओं का जीवन खतरे में हो गया है। यहां तक कि जमीन भी प्रभावित हो रही है। आई. यू. सी. एन. ने जो जातियां समाप्त हो रही है, उनकी सुरक्षा के लिए सूची बनाई है।

अंतरराष्ट्रीय जैव विविधता वर्ष के लिए प्रतीक चिह्न भी बनाया गया है। यह भी दर्शाया गया है कि जैव विविधता से जीवन है। 2010 के अंक में मछलियां, लहरे, सारस, आदमी, बच्चा और पेड़ दर्शाए गए हैं।

एक नारा भी दिया है ''जैव विविधता हमारा जीवन है।''

कोपेनहेगन (COP-10) का नारा है कि 'जीवन सुरक्षा में व्यवस्थित है और भविष्य में भी ऐसा ही हो। यह भविष्य के लिए मनुष्य और जैव विविधता में सामंजस्य दर्शाता है। प्रतीक चिह्न के एक चक्र में विभिन्न प्रजातियों को मनुष्य के साथ दर्शाया गया है।

संदर्भ-

1. मिश्र पी. के. 2006 बायोडाइवर्सिटी कन्जर्वेशन: एग्रिबायोज इंडिया।
2. गाडगिल माधव: 'इंडिजिनस नॉलिज फॉर बायोडाईवर्सिटी कन्जर्वेशन एम्बिओ' 22
3. पांडे शिवेंद्र कुमार, (जून 1993) 'पर्यावरण संरक्षण में जीव मंडल,' देशकाल संपदा, रांची।
4. पांडे शिवेंद्र कुमार (अक्टूबर 2001) 'वन्य जीवन के संरक्षण का महत्व', योजना, नई दिल्ली
5. पांडे शिवेंद्र कुमार (अगस्त 2003) 'भारत भाग्य विधाता पर्वत', विज्ञान प्रगति, नई दिल्ली
6. बाबू डॉ. जी. राम प्रसाद (मई 2010) 'साइंस रिपोर्टर', नई दिल्ली

❑

6

महान भारतीय रसायन-वैज्ञानिक प्रो. शांतिस्वरूप भटनागर

मधु ज्योत्स्ना

भारतीय विज्ञान के पुनर्जागरण के पुरोधा प्रो. शांतिस्वरूप भटनागर भारत में आधुनिक रसायन-विज्ञान के क्षेत्र में शोध-कार्य के प्रवर्तकों में से एक थे। वे भारतीय उच्च शिक्षा के आधार-निर्माता और महान शिक्षाविद् थे। उनकी देख-रेख में देश में अनेक वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं का निर्माण हुआ। देश में उच्च शिक्षा के आधुनिकीकरण में उनकी अहम भूमिका थी और भारत में विज्ञान के क्षेत्र में उनके सफल नेतृत्व से अनेक शोध संस्थाओं का शृंखलाबद्ध निर्माण हुआ।

इस भारतीय रसायनज्ञ का जन्म स्वतंत्रता पूर्व भारत में इक्कीस फरवरी 1894 में पंजाब प्रांत (वर्तमान पाकिस्तान) में शहपुर जिले के 'मेरा' नामक स्थान पर हुआ था। जब वे मात्र आठ माह के ही थे, उसी समय उनके पिता परमेश्वरी सहाय की असामयिक मृत्यु ने इनके परिवार को अस्त-व्यस्त कर दिया। सभी कठिनाइयों को झेलते हुए उन्होंने अपने बाद के तेरह वर्ष अपने नाना के संरक्षण में उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर में गुजारे।

प्रो. भटनागर के व्यक्तित्व के निर्माण में उनके नाना की विशेष भूमिका थी। नाना के प्रभावकारी संरक्षण में बालक शांतिस्वरूप विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विशेष रूप से सक्रिय हुए। इंजीनियरी और विज्ञान की ओर आकृष्ट होते गए। यही नहीं उनके नाना ने उनके अंदर बहुत छोटी उम्र में ही ज्यामिति और बीजगणित के प्रति विशेष लगाव पैदा कर दिया। उस उम्र में ही वे स्वचालित मशीनी खिलौनों के निर्माण में भी दक्ष हो गए। नाना की देख-रेख में ही उन्होंने उर्दू काव्य क्षेत्र में भी प्रवेश किया। उन्होंने उर्दू में 'करामाती' नामक कविता लिख कर प्रथम पुरस्कार भी प्राप्त किया।

नाना के प्रभावकारी संरक्षण में उनके अंदर लगातार विज्ञान के प्रति जिज्ञासा और अभिरूचि बढ़ती ही गई। उन्होंने 1912 में दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की। मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने लाहौर के 'दयाल सिंह महाविद्यालय' से प्रथम श्रेणी में इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर इसके बाद उन्होंने यहीं 'फोरमैन क्रिश्चियन कॉलेज' में बी.एससी. में प्रवेश ले लिया। इसी महाविद्यालय से बी.एससी. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने रसायन शास्त्र में एम.एससी की उपाधि भी प्राप्त की।

एम. एससी की उपाधि प्राप्त करने के बाद शांतिस्वरूप दो वर्षों के उच्च शोध के लिए इग्लैंड चले गए। जहाँ उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय के यूनिवर्सिटी कॉलेज में शोध कार्य के लिए पंजीकरण कराया। वहां उन्होंने अपने समय के विश्वविख्यात अंग्रेज रसायनज्ञ वैज्ञानिक प्रो. पी.जी.डोन्नन के निर्देशन में शोध-कार्य पूरा करने के बाद 1921 में डी.एससी की उपाधि प्राप्त की।

1921 में स्वदेश लौटने पर उन्होंने महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी के आमंत्रण पर काशी हिंदू विश्वविद्यालय के नवसृजित रसायन विभाग में प्रोफेसर के पद पर कार्य करना शुरू किया। उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय में 1924 तक अध्यापन-कार्य किया। इस काल में ही उन्होंने विज्ञान-अध्यापन तथा शोध के साथ ही अनेक रचनात्मक कार्य भी किए। काशी हिंदू

विश्वविद्यालय के कुलगीत की रचना उन्होंने विश्वविद्यालय में अध्यापन काल में ही की थी। आज काशी हिंदू विश्वविद्यालय में किसी कार्यक्रम की शुरुआत के पहले उनके द्वारा रचित कुलगीत का गायन अनिवार्य परंपरा बन गई है।

1924 से 1940 तक वे पंजाब विश्वविद्यालय में प्राध्यापक रहे। उन्होंने अपने कार्यकाल में भारतीय विश्वविद्यालयों में रसायन विषय से संबंधित अनेक शोध-कार्यों को प्रोत्साहित किया। उनका यह कार्य भारत में अनुप्रयुक्त रसायन एवं औद्योगिक रसायन के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण था। वे भारत में औद्योगिक और अनुप्रयुक्त रसायन के क्षेत्र में शोध व्यवस्था के अग्रणी माने जाते हैं। उन्होंने चुम्बकत्व को एक उपकरण के रूप में प्रयोग करते हुए रसायन से संबंधित ढेरों प्रयोग और शोध संपादित किए। प्रो. भटनागर ने भौतिकीविद प्रो. आर. एन. माथुर के साथ मिलकर भौतिक रसायन के क्षेत्र में ''भटनागर-माथुर'' सिद्धांत प्रतिपादित किया।

स्वतंत्रता के पूर्व एवं स्वतंत्रता के बाद देश को तकनीकी एवं वैज्ञानिक शोध के क्षेत्र में आगे ले जाने में प्रो. भटनागर के प्रयासों की विशेष भूमिका रही है। 1930 में देश में विकास की दिशा को आगे बढ़ाने के लिए भविष्य के लिए नए उद्योग के साथ ही अन्य संसाधनों और साधनों की वृद्धि के उद्देश्य से किसी सुव्यवस्थित संस्था का गठन नहीं हो पाया था। ऐसे समय में विश्वविख्यात विज्ञान पत्रिका 'नेचर' के संपादक 'सर रिचार्ड ग्रेगरी' ने 1933 में भारतीय विश्वविद्यालयों और वैज्ञानिक विभागों के निरीक्षण के बाद भारत सचिव सैमुअल हॉयर का ध्यान भारत में उपयुक्त वैज्ञानिक शोध-व्यवस्था की स्थापना की ओर दिलाया। उन्होंने भारत में वैज्ञानिक शोध-प्रक्रिया को आगे बढ़ाने की दिशा में ब्रिटेन की तरह विज्ञान एवं तकनीकी शोध संगठन संस्थाओं की स्थापना कर राष्ट्रीय तकनीकी संसाधनों की सुलभता में वृद्धि कर औद्योगिक प्रगति की दिशा में मार्ग प्रशस्त करने का सुझाव दिया।

सर ग्रेगरी ने भारत-भ्रमण में अपने अनुभव से प्राप्त तथ्यों के आधार पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा- ''मैं जानता हूँ कि भारत में भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण, वानस्पतिक सर्वेक्षण, मौसम विभाग और खानिकी जैसे अन्य क्षेत्रों में काम हो रहा है। लेकिन मैं समझता हूँ कि भारत में वैज्ञानिक विकास के लिए इन संस्थाओं में और आगे शोध के लिए अधिक जांच पड़ताल के बाद और अधिक वैज्ञानिक प्रयास की जरूरत है।''

ग्रेगरी अकेले व्यक्ति नहीं थे जिन्होंने भारत के लिए इस प्रकार की शोध संबंधी आवश्यकता को महसूस किया। प्रो. चन्द्रशेखर वेंकट रामन, लेफ्टिनेन्ट कर्नल साइमूर स्वेल और डॉ. जे.सी.बोस ने भी शुरू में ही वैज्ञानिक विकास के लिए परामर्श समिति में भारत के लिए इसी प्रकार के संगठन के लिए अपना मंतव्य व्यक्त किया था। कोलकाता और बेंगलूर में कार्यरत भारतीय वैज्ञानिक समुदाय ने इसी दिशा-निर्देश का अनुभव करते हुए विज्ञान संस्थान, एवं विज्ञान अकादमी के निर्माण की पहल की।

सर हरारे ने वाइसराय लार्ड विलिंग्टन से वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान विभाग के गठन के लिए परामर्श किया। ''मई 1934 में भारतीयों के प्रति घटिया सोच रखने वाली उपनिवेशीय सरकार ने कहा कि विज्ञान और औद्योगिक विकास के लिए भारत में विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान विभाग की स्थापना की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार भारत में विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान विभाग का प्रस्ताव उपनिवेशीय सरकार द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। उपनिवेशीय सरकार एक अन्य प्रस्ताव पर औद्योगिक एवं वैज्ञानिक शोध के लिए थोड़ी छूट देने के लिए तैयार हुई। 1934 में एक सूचना विभाग का निर्माण किया गया, जो अप्रैल 1935 में ''भारतीय भंडार विभाग'' के अंतर्गत सक्रिय हुआ। इस संगठन के पास बहुत सीमित साधन थे, जिसके चलते किसी प्रकार की औद्योगिक गतिविधि का संचालन करना संभव नहीं था। इस संस्था का मुख्य कार्य गुणता नियंत्रण था। वास्तव में बढ़ते हुए दबाव को देखकर अंग्रेजी सरकार ने एक ऐसे संगठन का निर्माण

किया जिसके माध्यम से उच्च स्तरीय शोध की बात करने वालों को टाला जा सके।

जब द्वितीय विश्व युद्ध आरंभ हुआ उस समय इस संस्था को समाप्त कर दिया गया। इस संस्था को समाप्त करने की सिफारिश करने वाले रामास्वामी मुदलियार वाणिज्यिक सदस्य थे। औद्योगिक सूचना-तंत्र के विषय में उनका कहना था ''इस वैज्ञानिक सूचना-तंत्र को इसलिए समाप्त किया जाना चाहिए क्योंकि इसके माध्यम से इस दिखावटी संगठन से भारत में किसी तरह का वैज्ञानिक विकास संभव नहीं है। इसके बदले उन्होंने वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् नामक एक विशाल वैज्ञानिक और औद्योगिक शोध-क्षमता वाली संस्था के निर्माण का प्रस्ताव दिया। मुदलियार की इस प्रस्तावना का स्पष्ट संकेत विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के गठन के संबंध में था। अंततः अप्रैल 1940 में अंग्रेजी सरकार द्वारा रामास्वामी मुदलियार के नेतृत्व में दो वर्ष के लिए इस संस्था का गठन किया गया। प्रो. शांतिस्वरूप भटनागर भी इस संस्था के सदस्यों में से एक थे। रसायन-विज्ञान के क्षेत्र में इस संस्थान को क्रिया-कलापों में उनकी विशेष भमिका रही। बाद में प्रो. शांतिस्वरूप भटनागर वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के सम्मानित निदेशक और रामास्वामी मुदलियार अध्यक्ष बने। उस समय विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का सलाना बजट रु. 5,00,000 का था और यह संस्था 'वाणिज्य विभाग' के अधीन थी।

वर्ष 1940 के अंतिम समय में इस संस्था में अस्सी शोध कर्मियों को काम पर लगाया गया। अपनी स्थापना के मात्र दो वर्ष की समयावधि में ही विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् ने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रयोगजनित अनेक कार्यों का संपादन किया। परिषद् द्वारा थोड़े समय में किए गए इन समस्त कार्यों में बलूचिस्तान में सल्फर निर्माण प्रक्रम, गैस एवं वस्त्र उत्पादन, खाद्य तेल, वसा और गैसीय मिश्रण से संबंधित क्रीम निर्माण और सेना के बूटों के लिए प्लास्टिक पैकिंग का निर्माण तथा गोला-बारूद के निर्माण के साथ ही लंबे समय के लिए विटामिन तैयार करने की दिशा में भी कार्य किया गया।

1941 में प्रो. शांतिस्वरूप भटनागर ने सरकार को एक औद्योगिक अनसंधान प्रयोग समिति के निर्माण का प्रस्ताव दिया। उनके इस प्रस्ताव पर सरकार सहमत हो गई और इसके लिए अलग से एक अरब रुपए 5 वर्ष के लिए आबंटित किए गए थे। मुदलियार और प्रो. भटनागर ने मिलकर वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के लिए स्वायत्तशासी संविधान का निर्माण किया।

28 सितंबर 1942 में 'बोर्ड ऑफ साइंटीफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च (बी.एस.आई.आर.) यूटिलाइजेशन कमेटी को वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद काउंसिल ऑफ साइंस और इंडस्ट्रियल रिसर्च (सी.एस. आई.आर.) की परामर्शदात्री संस्था के रूप में बदल दिया गया। 1943 में प्रो. शांतिस्वरूप भटनागर द्वारा देश में पांच वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं की स्थापना के लिए प्रस्तुत प्रस्ताव को सरकार द्वारा कार्यान्वित किया गया। इन प्रयोगशालाओं में राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला, राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला, दहन शोध केंद्र और ग्लास और सेरामिक शोध संस्थान के नाम चर्चित हैं। 1944 में स्थापित ग्लास और सेरामिक शोध संस्थान के लिए सी. एस.आई.आर. के साथ ही निर्माणाधीन अन्य प्रयोगशालाओं के लिए भी 10 करोड़ के बजट की व्यवस्था की गई। सी.एस.आई.आर. को ऐसे समय पर टाटा के औद्योगिक घराने से दो करोड़ रुपए का दान रासायनिक धातुकर्म एवं दहन शोध-कार्यों के लिए प्राप्त हुआ।

1947 में जब भारत आजाद हुआ और उद्योग एवं विज्ञान प्रेमी पं. जवाहर लाल नेहरू देश के प्रथम प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने देश को विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में आगे ले जाने का जोरदार प्रयास शुरू किया। अपने इस अभियान के अंतर्गत उन्होंने वैज्ञानिक संस्थाओं के गठन और शोध-कार्य के लिए प्रयोगशालाओं के निर्माण का कार्य प्रारंभ किया। अपने इस प्रयास के लिए उन्होंने देश में अनेक संस्थाओं और संगठनों को गठित

किया। इस कार्य के लिए देश के समस्त वैज्ञानिकों को विशेष रूप से अवसर प्रदान किया गया। देश को विज्ञान और उद्योग के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने के इस प्रयास के अंतर्गत पं. जवाहर लाल नेहरू ने ही वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सी.एस.आई.आर.) का गठन किया और प्रो. शांतिस्वरूप भटनागर को उसका अध्यक्ष बनाकर उन्हें देश को विज्ञान और उद्योग के क्षेत्र में आगे ले जाने का दायित्व सौंपा।

इस महत्वपूर्ण पद पर प्रो. शांति स्वरूप भटनागर द्वारा रासायनिक प्रयोगशालाओं की शृंखलाबद्ध स्थापना और उनके विकास के लिए किए गए कार्यों के कारण उन्हें भारत में ''अनुसंधान प्रयोगशालाओं का पिता'' कहा जाता है। उन्होंने देश में एक दर्जन रासायनिक एवं अन्य प्रयोगशालाओं की स्थापना की। इसमें राष्ट्रीय खाद्य प्रसंस्करण शोध संस्थान, मैसूर; राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला, पुणे; राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला, नई दिल्ली; राष्ट्रीय मौसम विज्ञान प्रयोगशाला, जमशेदपुर और केंद्रीय दहन शोध संस्थान, धनबाद जैसी संस्थाएं शामिल हैं।

प्रो. शांतिस्वरूप भटनागर ने अपने समकालीन वैज्ञानिक होमी जहांगीर भाभा, प्रशांत चंद्र महालनोबीस, विक्रम अंबा लाल साराभाई, मेघनाथ साहा, सत्येंद्र नाथ बसु और नीलरतन धर के साथ मिलकर स्वतंत्र भारत के प्रौद्योगिक एवं वैज्ञानिक विकास के अनेक कार्यों को अंजाम दिया।

आजादी के बाद वे देश में उच्च शिक्षा के विकास और शोध संबंधी नीति निर्धारण के लिए गठित संस्था विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) के प्रथम अध्यक्ष बनाए गए। भारतीय संविधान के निर्माण में भी प्रो. शांतिस्वरूप भटनागर की महत्वपूर्ण भूमिका थी। 1948 में गठित **''वैज्ञानिक मानव शक्ति समिति''** के माध्यम से रपट प्रस्तुत कर उन्होंने आजाद भारत के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र के लिए नीति निर्धारण को आधार प्रदान किया।

प्रो. शांतिस्वरूप भटनागर दो दशक तक देश के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक रहे। शिक्षक के रूप में उनका व्यक्तित्व अत्यंत प्रेरक था। वे अपने शैक्षणिक कार्य से अत्यधिक संतुष्ट थे। 1928 में प्रो. शांतिस्वरूप भटनागर ने प्रो. के. एन. माथुर के साथ मिलकर ''भटनागर-माथुर इंटरफेयरेन्स बैलेन्स'' नामक उपकरण का निर्माण किया था। यह उपकरण उच्चस्तरीय संवेदनशीलता से युक्त चुंबकीय गतिविधियों का मूल्यांकन करता है। उनका यह उपकरण 1931 में रॉयल सोसाइटी में प्रदर्शित किया गया, जिसे लंदन की 'एडम हिलर कंपनी' ने विक्रय के लिए बाजार में उतारा।

प्रो. भटनागर ने अनुप्रयुक्त और प्रौद्योगिक रसायन के क्षेत्र में अनेकों समस्याओं का हल प्रस्तुत किया है। उन्होंने गन्ना मिलों की चीनी उत्पादन से संबंधित कई समस्याओं का हल खोजा। इसी क्रम में एक रसायन वैज्ञानिक के रूप में उन्होंने दिल्ली क्लाथ मिल; जे.के. मिल्स लि., कानपुर; गणेश फ्लोर मिल्स लि. लायल पुर; टाटा आयल मिल लि., मुंबई; स्टील ब्रदर्स एंड कंपनी लि., लंदन के साथ ही इंगलैंड की 'एटक आयल कंपनी' के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण सेवा प्रदान की थी। एटक कंपनी के द्वारा भूगर्भ से पेट्रोल निकालने के लिए की जाने वाली, ड्रिलिंग में आने वाली समस्या के निराकरण ने उन्हें वैज्ञानिक जगत में विशेष प्रसिद्धि दिलाई।

प्रो. शांतिस्वरूप भटनागर ने ''कोलॉइड रसायन'' के क्षेत्र में एक उपयुक्त हल प्रस्तुत करने का काम किया। उनके द्वारा भूगर्भ की गहराई में मिट्टी के लिसलिसेपन के कारण तेल निकालने के लिए पाइप धंसाने में होने वाली समस्या के निराकरण में मिली सफलता से मेसर्स स्टील ब्रदर्स का प्रबंधन बहुत प्रभावित हुआ और प्रो. भटनागर को विशेष शोध के लिए एक लाख पचास हजार रुपए देने की पेशकश की। कंपनी ने यह धनराशि प्रो. भटनागर की इच्छानुसार पंजाब विश्व विद्यालय को उपलब्ध करा दी। इस धनराशि का प्रयोग प्रो. भटनागर के दिशानिर्देशन में विश्वविद्यालय में पेट्रोलियम पर शोध-कार्य में किया गया। कंपनी द्वारा

प्राप्त इस धनराशि के सहयोग से संचालित संयुक्त परियोजना के अंतर्गत पेट्रोलियम आधारित मोम के उत्पादन और केरोसीन तेल की लपट की ऊंचाई को बढ़ाने और अधिक ऊर्जा प्राप्ति के साथ ही खाद्य तेलों एवं खनिज तेलों से प्राप्त होने वाले अपशिष्ट पदार्थों को फिर से उपयोग करने की दिशा में शोध कार्य में उपयोग किया गया। कंपनी इस दिशा में प्रो. भटनागर के कार्य से इतनी प्रभावित हुई कि उसने इस संयुक्त शोध परियोजना के लिए आबंटित धनराशि की मात्रा और काम के समय सीमा को पांच साल से दस साल कर दिया। इस काम की एवज में किसी भी तरह का आर्थिक लाभ लेने से प्रो. भटनागर ने साफ-साफ मना कर दिया था। उन्होंने कंपनी से प्राप्त उक्त धनराशि को पूरी तरह विश्वविद्यालय की शोध-क्षमता वृद्धि के कार्य में लगाने को कहा। उनके इस त्याग के विषय में उस समय के विश्वविख्यात खगोल भौतिकविद् प्रो. मेघनाथ साहा ने 1934 में लिखा ''आप के इस त्यागमय कार्य ने विश्वविद्यालयों में शैक्षणिक कार्य में लगे वैज्ञानिकों का जनता के बीच सम्मान बढ़ाया है।''

प्रो. शांतिस्वरूप भटनागर ने प्रो. के. एन. माथुर के साथ मिलकर ''फिजिकल प्रिंसिपल एंड ऐप्लीकेशन ऑफ मैग्नेटो केमेस्ट्री'' नामक एक पुस्तक की रचना की है। इस पुस्तक को मैकमिलन ने प्रकाशित किया। इस पुस्तक के विषय में महान भारतीय रसायनज्ञ आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय ने लिखा- ''नेचर'' के पृष्ठों को पलटते समय मैकमिलन के अंतिम विज्ञापन में आप की पुस्तक के विषय में पढ़कर मेरी आंखें चमत्कृत रह गईं। 'करेन्ट साइन्स' में प्रो. स्नोनर जैसे चर्चित समीक्षक ने इस पुस्तक की समीक्षा में कहा कि प्रो. मेघनाथ की भौतिकी पर पुस्तक के साथ-साथ एक अन्य भारतीय की कृति को देखकर मेरा हृदय अत्यंत गद्गद हो उठा है। इस कार्य से रसायन के क्षेत्र में काम करने वाले भारतीयों का मान बढ़ा है।''

प्रो. शांतिस्वरूप भटनागर मात्र विज्ञान के प्रचार-प्रसार और आविष्कार तक ही सीमित नहीं रहे। वे सफल शायर और शिक्षाविद् भी थे। उनकी उर्दू की शायरी का एक संग्रह प्रकाशित है। आधुनिक भारत की उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उनका विशेष योगदान रहा है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रथम अध्यक्ष के रूप में उन्होंने देश की विश्वविद्यालयी शिक्षा की नींव के निर्माण का काम किया। आगे चलकर महान वैज्ञानिक और शिक्षाविद् प्रो. दौलत सिंह कोठारी जैसे अनुदान आयोग के चर्चित अध्यक्ष को भारतीय विश्वविद्यालयीय शिक्षा को ठोस आधार प्रदान करने में बहुत सुविधा हुई।

प्रो. भटनागर द्वारा विज्ञान के क्षेत्र में किए गए विश्वस्तरीय विकास कार्यों को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने 1941 में उन्हें 'आर्डर ऑफ ब्रिटिश एम्पायर' पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया था। 1941 में उन्हें 'नाइट बैचलर' सम्मान प्रदान किया गया। 1943 में उन्हें ब्रिटिश रॉयल सोसाइटी की सदस्यता से सम्मानित किया गया।

विज्ञान सेवाओं को ध्यान में रखकर उनकी याद में भारत सरकार विज्ञान के क्षेत्र में उच्चस्तरीय काम करने वाले वैज्ञानिकों को 'भटनागर पुरस्कार' से सम्मानित करती है। इस महान भारतीय रसायन-वैज्ञानिक की मृत्यु 1955 में मात्र 61 वर्ष की उम्र में हुई थी। ?

❑

7

ऊर्जा का प्राकृतिक विकल्प : पवन ऊर्जा

डॉ. दीपक कोहली

मनुष्य के विकास तथा कल्याण के लिए ऊर्जा की भूमिका सर्वविदित है। ऊर्जा की खपत का मनुष्य के रहन-सहन के स्तर से सीधा संबंध है अर्थात् प्रति व्यक्ति ऊर्जा की खपत में वृद्धि के साथ-साथ रहन-सहन में सुधार होता है। चाहे औद्योगिक क्षेत्र हो या कृषि, परिवहन या घरेलू क्षेत्र ही क्यों न हो ऊर्जा की आवश्यकता किसी न किसी रूप में हमेशा अवश्य पड़ती है।

जहां तक ऊर्जा के साधनों का सवाल है, ये सीमित ही हैं। उपलब्ध ऊर्जा साधनों को हम मुख्य रूप से दो श्रेणियों में बांट सकते हैं-

1. पारंपरिक ऊर्जा स्रोत
2. गैर - पारंपरिक ऊर्जा स्रोत

ऊर्जा के पारंपरिक स्रोतों में प्राकृतिक गैस, तेल, पेट्रोल, कोयला आदि सम्मिलित हैं। किंतु पृथ्वी पर इनका भंडार अत्यंत सीमित है। संभावना है कि अगली शताब्दी तक इनका भंडार समाप्त हो जाएगा। इसलिए ऊर्जा के वैकल्पिक अथवा गैर-पारंपरिक साधनों के अनुसंधान एवं विकास से ही ऊर्जा की समस्या का समाधान संभव है। ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों में सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, समुद्र ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा, बायोगैस ऊर्जा व हाइड्रोजन ऊर्जा आदि के प्रयोग सम्मिलित हैं।

ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों में पवन ऊर्जा का नाम सस्ते एवं आसानी से सर्वत्र सुलभ होने के कारण उल्लेखनीय हैं। प्राचीन काल से ही पवन-शक्ति का प्रयोग विभिन्न कार्यों को संपादित करने में होता आया है। सर्वप्रथम पवन चक्कियां ईरान में छठी शताब्दी में स्थापित की गई थीं। तब से आज तक पवन चक्कियों के विकास में आशातीत वृद्धि हुई है। मध्य युग में चार पंखों वाली डच पवन चक्कियों के उद्भव के साथ पवन ऊर्जा का उपयोग बहुत लोकप्रिय हो चला था। यूरोप के अनेक भागों में पवन चक्कियां काफी सामान्य थीं और ग्रामीण क्षेत्रों में खपत की जाने वाली ऊर्जा में इन मिलों का काफी योगदान था। उन्नीसवीं शती के अंत तक नीदरलैंड और डेनमार्क में इन पवन चक्कियों की संख्या क्रमश: 10,000 और 30,000 पहुंच चुकी थी। बीसवीं शताब्दी के मध्य तक अमेरिका में कई पंखों वाली विकसित पवन चक्कियां प्रमुखत: जल खींचने के लिए लगाई गईं जिनकी संख्या 60 लाख के निकट थीं। वर्तमान काल में भी अनेक देशों में पवन चक्कियों का उपयोग विभिन्न कार्यों के लिए किया जाता है।

पृथ्वी के वातावरण में हवा निरंतर गतिमान रहती है। पृथ्वी पर बहने वाली इस वायु में लगभग 2700 टेरावाट ऊर्जा होती है। अनेक देश पवन ऊर्जा की संभावनाओं पर निरंतर शोध कर रहे हैं। ब्रिटेन में पवन ऊर्जा वहां के सभी विद्युत केंद्रों से प्राप्त होने वाली ऊर्जा से 6 गुनी अधिक है। आयरलैंड में हवा से प्राप्त ऊर्जा वहां की आवश्यकता से सौ गुनी अधिक है। भारत में भी पवन-ऊर्जा की असीम संभावनाएं हैं। ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों पर विचार करने हेतु गठित संयुक्त राष्ट्र संघ के एक आयोग के अनुसार वायु ऊर्जा का सफलतम

उपयोग ग्रामांचलों में जल सुलभ कराने के लिए वहाँ के घरों तथा सुदूर इलाकों में विद्युतीकरण के लिए और विशाल आकार की पवन टरबाइनों द्वारा विद्युत उत्पादन के लिए किया जा सकता है। पवन ऊर्जा की दिशा में निरंतर प्रगति के ही फलस्वरूप आज यह ऊर्जा के अन्य वैकल्पिक स्रोतों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

भारत में पवन ऊर्जा की अच्छी संभावनाएं हैं। इससे 20,000 मेगावाट बिजली तैयार हो सकती है। विश्व बैंक तथा अमेरिका के ऊर्जा विभाग द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार ऐसे 29 देशों में जहां अन्य देशों की तुलना में हवा की अधिक महत्वपूर्ण भूमिका है, भारत अग्रणीय स्थान रखता है। अब तक गुजरात, उड़ीसा, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और राजस्थान आदि में पवन मानिटरिंग परियोजनाएं शुरू हो चुकी हैं। गुजरात के ओखा, तमिलनाडु के तूतीकोरिन, उड़ीसा के पुरी व महाराष्ट्र में कुल मिलाकर लगभग 6 मेगावाट क्षमता वाली छह पवन फार्म योजनाएं सफलतापूर्वक काम कर रही हैं। इन पवन फार्मों से एक करोड़ यूनिट से ऊपर बिजली पैदा की जा चुकी है। दो हजार से ज्यादा पवन पंप लगाए जा चुके हैं जिनसे खेती और पीने के लिए पानी प्राप्त होता है। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, मध्यप्रदेश और गोवा में 100 किलोवाट के औसतन आकार वाली यूनिटों पर आधारित दो परियोजनाएं प्रारंभ की जा चुकी हैं।

वायु से ऊर्जा कैसे प्राप्त होती है ? बहते पवन की गती से अत्यधिक ऊर्जा निहित होती है। पवन चक्कियों द्वारा इसी ऊर्जा को प्राप्त करके अन्य प्रकार की ऊर्जाओं में परिणत कर लिया जाता है। मूलत: पवन चक्कियां वायु के गति से घूमने वाले विशाल पंखों के घूर्णन और उनसे उत्पन्न शक्ति के सिद्धांत पर कार्य करती हैं। प्राचीन काल की पवन चक्कियां लकड़ी और कपड़े के विशाल पंखों से बनाई जाती थीं। आधुनिक युग में ऐलुमिनियम के आविष्कार के फलस्वरूप पवन चक्कियों के पंखे अब इसी हल्की धातु के बनाए जाने लगे हैं। इसका बड़ा लाभ यह हुआ है कि जहां प्राचीन काल में वे भारी होने के कारण मंद वायु में सुचारु रूप से कार्य नहीं कर पाती थीं वहीं अब हल्की धातु से बनी होने के कारण वे मंद या धीमी वायु में भी वायु की 60 प्रतिशत शक्ति को यांत्रिक ऊर्जा में परिवर्तित करने में सक्षम हैं। इनकी तकनीक में एक अन्य परिवर्तन यह हुआ है कि अब पूर्व काल की अनुप्रस्थ चक्कियों के स्थान पर लंबवत पवन चक्कियों का आविष्कार हो गया जिनकी कार्य-कुशलता अपेक्षाकृत अधिक है। न्यू मेक्सिको में स्थापित ऐलुमिनियम की दो पंखो वाली एक आधुनिक पवन चक्की एक मिनट में 40 चक्कर घूमकर 200 किलोवाट बिजली उत्पन्न करने की क्षमता रखती है।

भारतवर्ष में पवन ऊर्जा के उपयोग पर संगठित अनुसंधान कार्य वर्ष 1952 में शुरू हुआ। इसकी प्रारंभिक रचना अत्यधिक जटिल होने के साथ-साथ छोटे किसानों की पहुंच के बाहर थी। कालांतर में डच संस्था 'टूल' ने भारतीय संस्थान 'आरगेनाइजेशन ऑफ द रूरल पुअर' के सहयोग से पवन चक्की का निर्माण स्थानीय उपलब्ध सामग्री से किया गया। यह पवन चक्की मूल रूप से कम वायु वेग क्षेत्रों के लिए सर्वथा उपयुक्त है। यह पवन चक्की 10 मीटर प्रति सेकंड से 36 कि.मी. प्रति घंटा तक के वायुवेग से चल सकती है। पवन चक्की की जल उठाने की क्षमता, वायुवेग एवं जल की सतह पर निर्भर करती है। 9 मी.प्रति सेकंड वायुवेग पर पवन चक्की 26,000 लिटर प्रति घंटा जल उठाने की क्षमता रखती है जबकि जल की सतह 9.8 मीटर नीचे हो।

आज कृषि क्षेत्र की विभिन्न आवश्यकताओं यथा- सिंचाई, जुताई, बुवाई आदि में लगने वाली ऊर्जा, कृषि उत्पादों के विपणन व वितरण में लगने वाली ऊर्जा, कृषि उत्पादों की प्रोसेसिंग में लगने वाली ऊर्जा आदि की पूर्ति के लिए पवन-ऊर्जा का बहुतायत से प्रयोग किया जा रहा है। लेकिन यहा पर छोटे-छोटे पवन ऊर्जा संयत्र ज्यादा लगाए जा रहे हैं। ये संयंत्र ग्रामीण क्षेत्रों को पर्याप्त ऊर्जा तो उपलब्ध करा ही रहे हैं, साथ में बड़े संयत्रों के विकास में पायलट संयत्र की भी भूमिका निभा रहे हैं। कृषि संबंधी उत्पादन कार्यों के अलावा किसानों के

रिहायशी इलाकों में गर्म पानी व वातानुकूलन की व्यवस्था में भी पवन ऊर्जा उपयोगी सिद्ध हो रही है।

ग्रामीण व शहरी दोनों प्रकार के क्षेत्रों में कूड़ा निपटान एक गंभीर समस्या है। इस कूड़े के उपचार हेतु हवा की आवश्यकता होती है। यदि पवन चक्की और वायु संपीडक (एयर कंप्रेसर) को जोड़ दिया जाए तो कूड़ा-उपचार की गति तेज हो सकती है। वाहितमल(सीवर) के निपटान में भी पवन-ऊर्जा की सहायता से हवा प्रवाहित की जा सकती है जिससे सीवर उपचार की प्रक्रिया में तेजी आ जाती है। इस संबंध में किए गए प्रयोग सफल रहे हैं।

ठंडे इलाकों में पानी-सर्दियों में जम जाता है, इससे जलजीव मर जाते हैं तथा प्रदूषण फैलने लगता है। इसका वनस्पतियों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है और प्रदूषण बढ़ता ही चला जाता है। धीरे-धीरे जल में ऑक्सीजन की मात्रा न्यूनतम हो जाती है। इसके अलावा जिन झीलों या नालों में गंदा पानी जाता है उनमें भी यह समस्या खड़ी हो जाती है। इन झीलों में स्थित जल की परतें बन जाती हैं। ऊपर का पानी गर्म होता है और हवा के बहने से उड़ता रहता है, जबकि नीचे का पानी ठहरा हुआ होता है। यदि पवन चक्की से प्राप्त ऊर्जा से पानी को पंप किया जाता है तो प्रदूषण नियंत्रण व कूड़ा निस्तारण की प्रक्रिया में तेजी आ जाती है। इसके लिए उपयुक्त वायु संपीडक लगाए जा सकते हैं।

पवन ऊर्जा अन्य स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा से सस्ती पड़ती है और साथ ही प्रदूषण मुक्त भी है। इसलिए भारत जैसे विकासशील देश के लिए पवन ऊर्जा का विकास करना ऊर्जा संकट को दूर करने का सबसे उपयुक्त साधन हो सकता है। संभवत: इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए पवन ऊर्जा परियोजना चलाने के लिए अब तक देश में 192 केंद्रों की पहचान की गयी है। इस कार्यक्रम को बढ़ावा देने के लिए चेन्नई में पवन ऊर्जा प्रौद्योगिकी केंद्र की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त अहमदाबाद, भुवनेश्वर, चंडीगढ़, भोपाल, गुवाहाटी, हैदराबाद एवं पटना में क्षेत्रीय कार्यालय खोले गए हैं। पवन ऊर्जा के उत्पादन में भारत का विश्व में जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका, डेनमार्क, एंव स्पेन के बाद पांचवा स्थान है। किंतु अभी भी देश में पवन-ऊर्जा विकास को और गति प्रदान करने की आवश्यकता है ताकि आने वाले समय में पवन ऊर्जा का उपयोग करके ऊर्जा-संकट की समस्या से और भी बेहतर ढंग से निपटा जा सके।

❑

8

जल साक्षरता

डॉ. श्रीकृष्ण महाजन

जल जीवन का आधार है। प्रत्येक नागरिक को इसके संरक्षण पर ध्यान देना चाहिए। अन्य प्राकृतिक साधनों के विपरीत जल की कुल मात्रा नियत होती है और इसे न तो बढ़ाया जा सकता है न घटाया जा सकता है। विकराल गति से बढ़ती हुई जनसंख्या पर हमें अंकुश लगाना होगा। अन्यथा इस नई शताब्दी की भावी पीढ़ी हमें कोसेगी क्योंकि हमारे प्राकृतिक संसाधन सिमटकर शून्य हो जाएंगे और अपनी प्यास बुझाने के लिए हमें एक गिलास पानी के लिए भी तरसना होगा। हमें अपनी समूची अर्थव्यवस्था में बदलाव लाना होगा और प्रयास करना होगा कि उद्योगों में कम पानी खर्च हो। क्योंकि पानी घटता जा रहा है आबादी बढ़ती जा रही है, अत: जितना बचाएंगे उतना ही पाएंगे। पानी है तो जीवन है अन्यथा पानी लाएगा आंखों में पानी।

जल साक्षरता (वाटर लिटरेसी) पर्यावरणीय शिक्षा का एक आवश्यक अंग है। इसका अर्थ यह है कि हमारा जल कहां से आता है, और हम किस प्रकार उसका उपयोग करते हैं। प्रत्येक वस्तु जिसे हम दैनिक जीवन में काम में लाते हैं या उसे स्पर्श करते हैं तो उसका स्वयं का एक जलवृत्त होता है अर्थात उस वस्तु के निर्माण में कितनी मात्रा में जल का उपयोग हुआ है। जैसे 1 कि.ग्रा. गेहूँ उत्पादन हेतु 1000 लि. पानी, 1 कि. ग्रा. चावल या धान के उत्पादन हेतु 1400 लि. एवं 1 किलो कागज के उत्पादन में 300 लि. पानी की आवश्यकता होती है जबकि 1 मीटरी टन इस्पात निर्माण के लिए 2,15,000 लि. पानी आवश्यक होता है।

नैतिक साहित्य में जल की महत्ता पर्याप्त रूप से वर्णित है। हमारे प्रचीन ग्रंथ वेद, पुराण, बाइबिल, कुरान आदि में जल के महत्व के बारे में प्राय: संदर्भ मिलता है। इन ग्रंथों में वेद सबसे प्राचीनतम माने गए हैं जिसमें जल एवं जलस्रोतों के बारे में वैदिक मंत्र आज भी जल संवर्धन (Aqua culture) के लिए आधारभूत माने जाते हैं।

संस्कृत साहित्य में जल संरक्षण की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। उक्ति है-

''जलबिन्दुनि पातेन क्रमश: पूर्यते घट:''

अर्थात् बूंद-बूंद से घड़ा भरता है।

जल ही जीवन है, जीवन ही जलमय है। हमारे आर्ष ग्रंथों में भी जल के लिए कहा गया है -

''धारायां आप: परमं पवित्रम्।''

अर्थात् पृथ्वी पर जल ही सबसे पवित्र द्रव्य है। संस्कृत भाषा में जल के लगभग एक सौ पर्यायवाची शब्द हैं। अत: जल ही जीवन का आधार है जल के बिना जीवन के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

पृथ्वी पर जितना पानी पाया जाता है, उसमें से एक प्रतिशत से भी कम अंश, जल-चक्र में भाग लेता है। इस 1 प्रतिशत में से आधा भाग ही केवल नदियों,

झीलों व तालाबों आदि में पाया जाता है। अन्य प्राकृतिक संसाधनों के विपरीत जल की कुल मात्रा नियत होती है।

जल, वायु एवं मृदा प्रकृति की देन हैं अत: सभ्यता के विकास के साथ ही प्रत्येक नागरिक को इनके संरक्षण, परिरक्षण एवं विस्तार हेतु ध्यान देना चाहिए। सभ्य नागरिक को इतना संवेदनशील होना चाहिए कि जब कभी घर या बाहर नल टपकते हो, नाली बंद हो या जल स्रोत प्रदूषित हो रहा हो तो उसके मन में चुभन होनी चाहिए।

इस संबंध में निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान देने की आवश्यकता है :-

1. पृथ्वी पर कुल जल का जो मात्र 0.6 प्रतिशत भाग प्राप्त है, उसमें से हमने अधिकांश मात्रा को पहले ही प्रदूषित कर दिया है।

2. विकराल गति से बढ़ती हुई जनसंख्या पर हमें अंकुश लगाना है, अन्यथा इस नई शताब्दी की भावी पीढ़ी हमें कोसेगी क्योंकि हमारे प्राकृतिक संसाधन सिमट कर शून्य हो जाएंगे और प्यास बुझाने के लिये एक गिलास पानी के लिए भी हम तरसेंगे।

   यदि समय रहते न ढूंढा जल, राशन की दुकानों से मिलेगा पेय जल। दो वक्त खाना, दो वक्त जल, ऐसा हो सकता है हमारा आने वाला कल।

   वर्तमान समय में विश्व के 50 करोड़ से अधिक लोग पानी की भीषण कमी का सामना कर रहे हैं, जो 2025 तक 280 करोड़ हो जाएंगे। अत: समय रहते हमें पानी के दुरुपयोग को हर हालत में रोकना है। अन्यथा हमें वर्ष में केवल एक ही दिन नहाने को पानी मिलेगा।

3. पर्यावरण स्थितियों एवं पारिस्थितिक असंतुलन से पृथ्वी का मानसूनी चक्र बिगड़ रहा है और भू-पृष्ठ जल प्रदूषण की चपेट में है। हमें अब ऐसे संकेत मिल चुके हैं कि लगभग 50 वर्षों में वर्षा में 15 से 30 प्रतिशत की कमी हो जाएगी, जिससे पृथ्वी का तापमान बढ़ेगा एवं रेगिस्तानी क्षेत्रों का अधिक विस्तार होगा व जमीन बंजर हो जाएगी।

4. प्राकृतिक जल संपदा के अंधाधुंध दोहन से भयंकर सूखे की स्थिति हो सकती है। धरती का सीना चीर-चीर कर हम वर्षों पुराना जल भी बाहर उलीच चुके हैं।

5. सड़के निर्माण कर जमीन का काफी बड़ा भाग हमने तारकोल से पाट दिया है या फिर सीमेंट कंक्रीट के जंगल खड़े कर दिए है। आखिर पानी जाए तो कहां जाए अंत में उसे नदी, नालों में बह कर समुद्र में मिलकर खारा ही हो जाना है। भू-जल के पुनर्भरण हेतु कुओं, बावडियों, तालाबों आदि को गहरा किया जाए और सतही जल को बहने से रोका जाए इसके लिए गांवो में विशेष रूप से बोरी बंधान जैसी विधि का उपयोग काफी लाभदायक सिद्ध हुआ है।

6. जहां कहीं भी जल बेकार बह रहा हो, नल की टोटियां अनावश्यक रूप से खुली हों, बच्चे हैंडपंप से जल व्यर्थ खर्च कर रहे हों तब उदासीन या निष्क्रिय न रहकर उन्हें तुरंत ऐसा करने से रोका जाना चाहिए। घर में जल के फिजूल खर्च को तुरंत रोकें। मेहमान की जल सेवा करते समय बिना औपचारिकता निभाए उनसे पानी का अवश्य पूछें और केवल मांगने पर ही जल सेवा करें क्योंकि अनेक बार मात्र एक घूंट पानी के लिए पूरा एक गिलास पानी बेकार चला जाता है। यही समय की मांग है। घरों में बेकार पानी को नाली में न बहाकर उसे बगीचे या गमलों में पौधों को सींचने के उपयोग में लाएं।

7. वर्तमान स्थिति यह हो गई है कि जल दूध से अधिक मंहगा हो गया है। यहां तक कि आप पाउच या बिसलेरी में मिनरल वाटर के नाम से बेचे जाने वाले पीने के पानी के लिए 10 से 15 रूपये प्रति लिटर के अनुसार कीमत चुका रहे हैं। भविष्य में यह पेट्रोल से भी अधिक महंगा हो सकता है।

8. हमें पीने के जल-स्रोतों को साफ रखने की आवश्यकता है। इस हेतु हम स्थानीय निकायों की परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सहायता कर सकते हैं। लगभग 25 हजार लोग विश्व में प्रतिदिन मर रहे हैं। इसका कारण प्रदूषित जल से उत्पन्न बीमारियाँ हैं। हमारी सभी नदियां जैसे- गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा, सोन आदि कूड़ा-करकट ढोते-ढोते थक गई है। अकेली यमुना में दिल्ली के निवासी प्रतिदिन एक हजार करोड़ लिटर गंदगी मिला रहे हैं। हमें अरबो रुपए इसके लिए खर्च करना पड़ता है। इस प्रकार हमें दोनों ओर से मार पड़ रही है। वास्तव में मनुष्य स्वयं जल को प्रदूषित करने का कारण है और वहीं बाद में पेयजल को शुद्ध करने हेतु विभिन्न प्रकार के फिल्टर या एक्वागार्ड आदि का प्रयोग करता है। कहा गया है कि -

   ''रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
   पानी गए न उबरे, मोती मानुस चून।।''

9. वन एवं वृक्षों की तेजी से अंधाधुंध कटाई से धरती आवरण विहीन हो गई है, चारागाह समाप्त हो गये हैं, मिट्टी का कटाव बढ़ गया है। अत: वृक्षारोपण के द्वारा हमें मिट्टी के कटाव को रोकना होगा। वर्तमान स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए यह उचित होगा कि देश का प्रत्येक नागरिक कम से कम पांच पौधे लगाकर उसकी भली-भांति देख-रेख करने का संकल्प करें।

   मालवा एवं निमाड़ के बारे में निम्नानुसार हमारी धारणा में शनै: शनै: परिवर्तन हुआ है :-

   पूर्व में :- निमाड़ धरती गहन गंभीर। पग-पग रोटी, डग-डग नीर।।

   वर्तमान में :- निमाड़ धरती गरम समीर। ना है रोटी, ना है नीर।।

   भविष्य में :- निमाड़ धरती सूखी सट्टा। पानी के लिए लट्ठम-लट्ठा।।

   परंतु अब निमाड़ क्षेत्र में नहर के निर्माण होने से स्थिति में परिवर्तन दिखने लगा है। हाल ही में भारत सरकार ने सभी सूखी नदियों को पुनर्जीवित करने की योजना बनाई है। जिसे अब अमल में भी लाया जा रहा है। मध्यप्रदेश पहला राज्य है जहां इस योजना को शुरू किया गया है। वर्तमान में हम जीवन के नैसर्गिक मूल्य से दूर होते जा रहे हैं। जल संसाधनों का संरक्षण करना हमारा नैतिक कर्त्तव्य भी है।

   वर्षा ऋतु में भूमि क्षरण के कारण नदियों में गाद जमा होने से नदियां उथली हो गई है। नदियों से गाद निकालने पर नदियां प्राकृतिक रूप से गहरी हो जाएंगी। इस संबंध में नागरिक श्रमदान आवश्यक है। नदियों को एक-दूसरे से जोड़ने का कार्य युद्ध स्तर पर किए जाने से समस्या का समाधान संभव है। वन संपदा को नष्ट किए बिना यह संभव होना चाहिए।

   हम जरा गंभीरतापूर्वक सोचें कि हम किस ओर जा रहे है :-

   1. जनसंख्या बढ़ती जा रही है, जमीन सिकुड रही है व प्राकृति उजड़ रही है। जंगल चरागाह गायब हैं, तालाबों, कुओं बावड़ियों से पानी गायब है।

   2. गंगा, यमुना नर्मदा, सोन, सरस्वती, कावेरी कुन्दा, वेदा सभी मानव के मैल से मैली हो चली हैं। शहर भर का कूड़ा-करकट, साबुन के पानी से नदी अब नाले में तब्दील हो चली है।

3. मोटर गाड़ियां, कारखानों की चिमनियां, झुग्गी झोपड़ियों की सिगड़ियां उगल रही हैं धुआं ही धुआं। इन्सान का अमन चैन गायब है, दम घुट रहा है, जीवन मृत्यु का अंतराल कम होता जा रहा है।।

4. सीमेंट कंक्रीट के जंगल ही जंगल है यही तो आज के विकास की फसल है। वन्य प्राणी गायब हैं, चरागाह गायब हैं, जड़ी-बूटियों का दोहन भी चरम सीमा पर है। धरती का मिजाज गर्म है।

5. उपभोग के दौर में आदमी दीवाना हो चला है, प्रकृति को उसने न समझा, न जाना है। धरती के खजाने से खुली लूट-खसोट है क्योंकि इंसान के दिल में खोट ही खोट है।।

6. प्रकृति भी कहती है ऐ इन्सानों ! मुझे जो मिटाओगे तो खुद भी मिट जाओगें। हरा भरा बोओगे तो हरा भरा पाओगे।

मुझे तो संवारोगे तो खुद भी संवर जाओगे, अब भी नहीं जागे तो खुद भी प्यासे मर जाओगे।।

जल संरक्षण हेतु कुछ मुख्य सुझाव इस प्रकार हैं-

1. वर्षा द्वारा प्राप्त जल को संगृहीत करना।

2. नए भवन निर्माण में छत के द्वारा वर्षा के जल को संगृहीत कर उसे कुंओं एवं नलकूपों (ट्यूबवेल) में भेजना।

3. स्कूली स्तर पर विशेष रूप से 6-12 वर्ष की आयु वर्ग के विद्यार्थियों को जल-साक्षरता एवं जल-संरक्षण हेतु पाठ्यक्रम में सामग्री शामिल करना।

4. बिंदुक सिंचाई (ड्रिप इरिगेशन) को बढ़ावा देना।

5. बंधान द्वारा जल संग्रहण करना।

6. फ्लश टॉयलेट के स्थान पर कंपोस्ट टॉयलेट को प्रोत्साहन देना। इससे ऊर्जा एवं जल की काफी बचत होगी।

7. विश्व जल दिवस 22 मार्च को प्रतिवर्ष मनाया जाता है। इससे जल-साक्षरता के क्रमवद्ध कार्य द्वारा लोगों में जल-संरक्षण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना।

8. जल बचत करने वाले उपकरणों का घरों में उपयोग किया जाए जैसे शॉवर्स, डिश वाशर, क्ले शॉवर आदि, परंतु ये सभी मानक स्तर के होने चाहिए।

9. खेतों के आसपास खाई बनाकर जल का संरक्षण किया जा सकता है।

10. जल का पुन: चक्रण किया जाए। इसमें आर्द्र भूमि उपचार का प्रयोग किया जा सकता है, जिससे गंदा पानी साफ होकर फसलों एवं वाटिकाओं में उपयोग में लाया जा सके। प्राय: इसमें कुछ ऐसे जलीय पौधे उपयोग में लाए जा सकते हैं जो जल को छानने का कार्य करते हैं, जैसे नाल (Phragmites or Reed grass), टाईफा, डक, वीड, जल कुंभी (Eichhornia) आदि जैविक फिल्टर (Biological Filter) के रूप में कार्य करते हैं।

वर्तमान में हमें प्राचीन एवं आधुनिक जल-संरक्षण विधियों को साथ-साथ अपनाने की भी आवश्यकता है जिससे वर्ष भर सभी जीवधारियों को पानी मिलता रहे और अन्य विकास कार्य भी संपन्न हो सकें।

अंत में विख्यात पर्यावरणविद् लेस्टर आर. ब्राउन के अनुसार पानी को बचाने के लिए हमें समूची अर्थव्यवस्था में बदलाव लाने होंगे और उद्योगों में पानी की उत्पादकता बढ़ानी होगी। ऐसी प्रणाली को अपनाना होगा जिसमें कम पानी खर्च हो, क्योंकि पानी घटता जा रहा है, आबादी बढ़ती जा रही है। अत: जितना बचाएंगे उतना ही पाएंगे। आज विश्व में प्रति दस मनुष्यों में से दो को ही केवल शुद्ध जल मिल पा रहा है। पानी है तो जीवन है, अन्यथा पानी लाएगा आंखों मे पानी।

संदर्भ :-

1 Khanna, D.R. 2001. Water : Then and Now. National Seminar on the Fresh water Ecosystem in and around Urban Area, its Management and Aquaculture in New Millennium, Sponsored by UGC Regional office, Bhopal, organised by Department of Zoology, Govt. P.G. College, Khargone (M.P.) abst. p.59.

2 Shroff, V.N.And Menol, T.G.K., 2001, Rain Water harvesting in Urban Areas, Ibid. p.48-59.

3. Brown Lester, R. 2011. lesterbrown@earthpolicy.com, जितना बचाएंगे, उतना ही पाएंगे, दैनिक भास्कर - 18.03.2011 पृ.क्र. 4।

4. महाजन, श्रीकृष्ण 2008 भारत की प्राकृतिक जल संपदा तथा उसके संरक्षण एवं प्रबंधन के उपाय, Environmental Conservation Journal (International Journal) Eds. Ashutosh Gautam And D.R. Khanna, Vol.9 (1&2) p. 149-151

5. Verma, S.S. 2002. जल संवर्धन में श्रम शक्ति की सहभागिता, निमाड़ स्तवन (बिन पानी सब सून) विविधा, पृ. क्र. 34

6. अब्दुल कलाम, ए.पी.जे. 2002 पानी ही पानी, निमाड़ स्तवन (बिन पानी सब सून) विविधा, पृ. क्र. 16-17

❑

9

शंख

डॉ. परशुराम शुक्ल

विश्व के प्राय: सभी सागरों और महासागरों में ऐसे अनेक जीव पाए जाते हैं, जिनका शरीर अत्यंत कोमल होता है और इनके शरीर पर कठोर आवरण होता है। इस प्रकार के कुछ जीवों में केवल एक ही आवरण होता है और कुछ जीवों में दो भागों वाला आवरण होता है। दो भागों वाले आवरण के जीव अपनी मांसपेशियों की सहायता से अपना आवरण खोल सकते हैं और बंद कर सकते हैं। इस प्रकार के जीवों को आरंभ में शंख (कॉन्क) कहा जाता था तथा इनका अध्ययन शंख विज्ञान (कॉन्कोलाजी) के अंतर्गत किया जाता था। कुछ समय बाद सभी कठोर आवरणधारी जीवों को शंख (कॉन्क) कहा जाने लगा। वर्तमान समय में शंख शब्द का प्रयोग ऐसे बड़े-बड़े घोंघों के लिए किया जाता है, जिनके आवरण का उपयोग शंख की तरह बजाने में किया जा सकता है। शंख भी समुद्री घोंघा है।

शंख विश्व के सभी उष्णकटिबंधीय सागरों और महासागरों में पाया जाता है। इसकी संख्या उन स्थानों पर अधिक होती है, जहां पानी का ताप 21 डिग्री सेल्सियस से नीचे नहीं जाता। शंख एक अत्यंत प्राचीन समुद्री जीव है। इसका जन्म ढाई करोड़ वर्ष पूर्व मायोसीन काल में टेथीज महासमुद्र में हुआ था। वर्तमान भूमध्यसागर टेथीज महासमुद्र का शेष बचा हुआ भाग है, किंतु आज भूमध्य सागर में शंख देखने को नहीं मिलता। यह प्लायोसीन और प्लास्टोसीन कालों में अपने चरम पर पहुंचा और आज हम इसका जो रूप देख रहे हैं वह उन्हीं कालों का है, अर्थात शंख की शारीरिक संरचना में लाखों वर्षों से कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

शंख की लगभग 50 जातियां हैं। इनमें 38 जातियां हिंद महासागर, लाल सागर, ईरान की खाड़ी, पूर्वी अफ्रीका के सागर तटों पर एवं मलाया द्वीप समूह से लेकर हवाई और ईस्टर आईलैंड तक पाई जाती हैं। इसकी 7 जातियां कैरेबियन सागर में, 4 जातियां मध्य अमरीका के प्रशांत महासागर के तटों पर तथा एक जाति पश्चिमी अफ्रीका के तटों पर पाई जाती है। अधिकांश जातियों के शंख उथले पानी में रहते हैं, किंतु इसकी कुछ जातियां ऐसी हैं जो 120 मीटर गहरे पानी में पाई जाती हैं। शंख प्राय: अपने को रेत अथवा मिट्टी में गाड़ लेता है और लंबे समय तक इसी स्थिति में आराम करता है। शंख के केवल एक पैर होता है। इसी से यह सागर के तल पर रेंगता अथवा चलता है, किंतु इसके चलने का तरीका सामान्य घोंघों से पूरी तरह भिन्न होता है। सामान्य घोंघों के पैर का निचला भाग एक प्लेट की तरह होता है। ये अपना पैर आवरण के भीतर खींचते हैं तो आवरण की खुली हुई दरार इनकी प्लेट से ढक जाती है। शंख के पैर का पंजा प्लेट की तरह न होकर दांतेदार नाखून की तरह होता है तथा यह इसी की सहायता से उचक-उचक कर चलता है। शंख के पैर का सिरा कत्थई रंग का होता है तथा इसकी उगलियां बढ़े हुए नाखूनों के समान लगती है। शंख इस पैर की सहायता से कभी-कभी बड़ी तेज गति से भी चलता है। यह तेज गति से भागने के लिए बड़ी जल्दी-जल्दी अपने पैर को जमीन पर गड़ाता है और उछलता है तथा इसी तरह उचक-उचक कर तेजी से भागता है। इसके साथ ही यह अपने पंजे से मांसाहारी मछलियों तथा समुद्री केकड़ों से अपनी रक्षा भी करता है। शंख की चाल हमेशा प्राणि वैज्ञानिकों के लिए शोध का विषय रही है। इसका आवरण इसके शरीर से चार गुना भारी होता है तथा इसकी मांसपेशियाँ भी कमजोर होती हैं, फिर भी यह अपने शरीर के आधे भाग के बराबर लंबी कूद किस प्रकार लगा लेता है ? यह रोचक होने के साथ आश्चर्यजनक तथ्य भी है। शंख उचक-उचक कर चलने का कार्य तो अपने पैर की सहायता से करता है, किंतु धीरे-धीरे रेंगने के लिए अपने मुंह के निकट के आवरण के नुकीले भाग का उपयोग करता है।

शंख की सभी जातियों की शारीरिक संरचना लगभग एक जैसी होती है, किंतु इनके आकार और रंगों में अंतर होता है। विश्व का सबसे बड़ा शंख ब्राजील का गोलायथ नामक शंख है। इसके आवरण की लंबाई 33 सेंटीमीटर तक एवं वजन 1.5 किलोग्राम तक होता है। कुछ जातियों के वयस्क शंखों के आवरण विकसित होकर पंख के समान बाहर की ओर फैल जाते हैं। इससे ये सागर तल में इधर-उधर लुढ़कने से बच जाते हैं और जहां चाहते हैं, वहां लंबे समय तक पड़े रहते हैं। शंख का शरीर भारी होता है एवं इसका आवरण इसके शरीर से लगभग चार गुना अधिक होता है। शंख के मुंह के भीतर का भाग गुलाबी होता है एवं ओठो के भीतर दो जबड़े होते हैं तथा जीभ कांटेदार होती है। शंख की सबसे बड़ी विशेषता इसकी बड़ी-बड़ी पूर्ण विकसित दो आंखे है। इसके मजबूत थूथन के दोनों ओर दो लंबे तने से निकले होते हैं जिन पर नारंगी लाल या पीले घेरे वाली आंखे होती है। शंख के थूथन के दोनों ओर दो संस्पर्शिकाएं भी होती है जो इसे भोजन प्राप्त करने में सहयोग करती हैं।

शंख पूर्ण शाकाहारी समुद्री जीव है। इसका प्रमुख भोजन सागर तल पर पाए जाने वाले पौधों के छोटे-छोटे टुकड़े हैं। छोटे आकार के शंख छोटे टुकड़े खाते हैं, जबकि बरमूडा फ्लोरिडा, ब्राजील और कैरेबियन सागर के तटों पर पाए जाने वाले बड़े आकार के शंख समुद्री पौधों के बड़े भागों को भी अपना आहार बना लेते है। इनके पेट में 4 सेंटीमीटर तक लंबे पौधों के टुकड़े मिले हैं।

शंख में नर और मादा दोनों की शारीरिक संरचना एक दूसरे से भिन्न होती है। इनमें मादा का आकार सामान्यतया नर से बड़ा होता है। ये संगम (मेटिंग) करते हैं, अर्थात शंख में अंडों का निषेचन मादा के शरीर के भीतर ही होता है। मादा शंख प्राय: गर्मियों में अंडे देती है। यह अंडे देने के लिए बहुत बड़े झुंड के साथ कम उथले पानी में आ जाती है और समागम के बाद एक बार में 2 लाख से लेकर 5 लाख तक अंडे देती है। मादा शंख के अंडे लंबी जेली जैसे झुंड में होते हैं। इस झुंड की लंबाई 21-22 मीटर तक हो सकती है। इसके अंडे देखने में एक बड़ी और पतली रस्सी जैसे मालूम पड़ते हैं। ये जन्म के बाद एक दूसरे से उलझ कर आपस में फँस जाते हैं, एवं इनके स्पंज जैसे गुच्छे बन जाते हैं तथा इनमें रेत भर जाती है।

शंख के अंडे तीन-चार दिन तक इसी स्थिति में पड़े रहते हैं। प्राय: चौथे दिन अंडे फूटते हैं और इनसे स्वतंत्र रूप से तैरने वाले डिम्म(लारवे) निकल आते हैं। इसके डिम्म समुद्री पौधों के अत्यंत छोटे-छोटे कण खाते हैं और कुछ समय बाद किसी चट्टान या सागर के तल से जाकर चिपक जाते हैं। यहीं पर इनका एक वयस्क के रूप में विकास होता है। शंख, गोताखोरों को कोई हानि नहीं पहुंचाता। गोताखोर इसे बाहर निकालते समय प्राय: सीने से लगाए रहते हैं, ताकि वह पुन: पानी में न चला जाए। इस समय यह कभी-कभी अपने नुकीले पंजों से गोताखोरों के सीने पर हल्की-हल्की खरोंचे बना देता है। ये खरोंचे घातक नहीं होतीं और कुछ ही दिनों में स्वत: ठीक हो जाती हैं।

शंख एक महत्वपूर्ण समुद्री जीव है तथा एक लंबे समय से मानव इसका उपयोग कर रहा है। फ्लोरिडा और बहामा के लोग इसका मांस खाते है। वेस्ट इंडीज

के लोग इसका मांस खाने के साथ ही इसके आवरण से सुंदर कलात्मक वस्तुएं तैयार करते हैं। पश्चिमी प्रशांत द्वीप के लोग इसका उपयोग कौड़ियों की तरह मुद्रा के रूप में करते हैं एवं इससे विभिन्न प्रकार की दवाइयाँ तैयार करते हैं।

शंख का एक नाम ट्राइटॉन है। प्राचीन यूनान के एक मिथक के अनुसार सागर का देवता ट्राइटॉन है। इसे प्राय: नेप्च्यून के दरबार में शंख बजाने वाले देवता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ट्राइटॉन की सभी प्रतिमाओं और चित्रों में इसे शंख के एक बड़े आवरण सहित दिखाया गया है।

विश्व के अधिकांश देशों में एक लंबे समय से इसका उपयोग एक वाद्य के रूप में हो रहा है। भारत सहित पूरे हिंद प्रशांत क्षेत्र, दक्षिणी और मध्य एशिया तथा उष्णकटिबंधीय अमरीका में सदियों से इसे वाद्य की तरह उपयोग में लाया जा रहा है। शंख को बजाने योग्य बनाने के लिए इसका ऊपर का नुकीला भाग हटा दिया जाता है, जिससे एक छेद निकल आता है। इसी छेद में हवा फूँकने पर इससे तेज आवाज निकलती है। विश्व के अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग अवसरों पर शंख बजाया जाता है। इसे घर, मंदिर, चर्च, विवाह-स्थल, युद्ध क्षेत्र आदि में उपयोग में लाते हैं। इसका उपयोग प्राय: पूजा, देवता का आह्वान, त्योहारों के अवसर पर, खुशी प्रदर्शित करने, चेतावनी देने, सहायता माँगने, भूतप्रेत भगाने, पशुओं को बुलाने, मछुआरों और मजदूरों को संकेत देने अथवा आदेश देने आदि के लिए किया जाता है। वर्तमान समय में शंख बजाने का प्रचलन तेजी से कम होता जा रहा है तथा इसका स्थान पीतल या इसी प्रकार की धातुओं के बने तुरही जैसे वाद्ययंत्र लेते जा रहे हैं, किंतु शंख को आज भी अनेक स्थानों पर पवित्रतम वाद्य समझा जाता है।

❑

10

पान: गुणों की खान

सतीश चंद्र सक्सेना

कहा जाता है कि पान लवों (होठों) की शान। पान खाने का रिवाज सदियों पुराना है। लगभग 4600 वर्ष पुरानी हडप्पाई सभ्यता में पान की खेती और ताम्बूल पत्र का उल्लेख मिलता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार लगभग 4000×6000 किमी तक फैले भौगोलिक क्षेत्र में 60 करोड़ व्यक्ति प्रतिदिन पान खाते हैं। ताम्बूल पत्र केवल वनस्पति विज्ञान का प्रतीक न होकर, संस्कृति, परंपरा और यहां तक कि पवित्रता का द्योतक है। इसी कारण पूजा पाठ और धार्मिक अनुष्ठानों तथा यज्ञों में ताम्बूल पत्र का प्रयोग होता है। पान के पत्ते को संस्कृत में ताम्बूल, हिंदी में पान, तमिल में वेट्रीलाइ और तेलुगु में तमलापाकु कहते हैं। इस प्रकार संपूर्ण भारत में पान खाने का रिवाज है और नगर में चौराहों एवं नुक्कड़ पर पान की दुकानों पर लोग पान खाते और गपशप करते देखे जा सकते हैं। दक्षिण एशिया और दक्षिण पूर्वी एशिया के लगभग 12 देशों में पान के पत्ते का किसी न किसी रूप में प्रयोग होता है।

इस पादप का उद्गम संभवत: मलेशिया अथवा भारत में हुआ। हांलाकि इसके उद्गम स्थल के बारे में ठीक से ज्ञान नहीं है। वैदिक काल में भी हमारे देश में लोग ताम्बूल पत्र से भलीभांति परिचित थे। ईसा से पूर्व भारत के दो महा आयुर्वेदाचार्यों चरक और सुश्रुत ने ताम्बूल पत्र के गुणों का बखान किया है।

पान की बहुत सी किस्में पाई जाती हैं जिनमें हल्का पीला बनारसी, हरा मगधी, केरल का त्रिरूर और मैसूरी तीखा प्रमुख है। इसके अतिरिक्त उड़ीसा और बांग्ला देश में भी कई किस्में उगाई जाती हैं। वस्तुत: यह सूची प्रर्याप्त लंबी है।

पान में सामान्यत: कत्था (खैर अथवा खादिर) चूना, सुपाड़ी (पूंगीफल) इलायची, लौंग, गुलकंद तथा कई प्रकार के खुशबूदार पदार्थो का बीड़ा बनाकर खाया जाता है। अब तो बीड़ों में विभिन्न प्रकार की तम्बाकू का प्रयोग होने लगा है। तम्बाकू युक्त पान खाकर लोग पीकदान रखे होने पर भी जहां चाहे पीक मार देते हैं जिससे गंदगी फैलती है और बदसूरत धब्बे नजर आते हैं। इस कारण कई देशों में पान खाने की आदत को दुर्व्यसन समझा जाता है। सुपाड़ी में आविषी यौगिक होने के कारण इसके खाने से हल्का सा सरूर आता है और फिर आदत पड़ जाती है।

लगभग दो वर्ष पहले दुबई सरकार ने पान के पत्तों के आयात पर प्रतिबंध लगा दिया था क्योंकि लोग खूबसूरत शहर में जगह जगह पीक मार कर गंदगी फैलाते थे। पाकिस्तान में भी पान खाने का बहुत रिवाज है और पान के पत्तों का भारत, बांग्ला देश और श्रीलंका से आयात किया जाता है।

कई लोकप्रिय हिंदी फिल्मों में भी पान खाने पर गाने फिल्माए गए हैं जिन्हें आज भी लोग बहुत मनोयोग से सुनते हैं।

यथा

1. खइके पान बनारस वाला खुल जाए बंद अकल का ताला

2. पान खाए सईया हमारो, सावली सूरतिया होंठ लाल-लाल

3. लौंगा इलायची का बीड़ा लगाया;

4. मलमल के कुर्ते पर छींट लाल-लाल इत्यादि

फिल्में समाज का दर्पण होती हैं। इन गानों के माध्यम से समाज में व्याप्त पान खाने के रिवाज को दर्शाया गया है।

लखनऊ के नवाबों के दरबार व मजलिसों में पान संस्कृति अपनी पराकाष्ठा पर थी। सुपारी काटने के लिए विशेष प्रकार के सरौतों, चांदी के सुंदर गिलौरीदानों और खूबसूरत पानदानों का प्रयोग होता था। विशेष अवसरों पर आयोजित मुजरों और नृत्य कार्यक्रमों में पान के बीड़े खास अंदाज में पेश किए जाते थे। पान को कामोत्तेजक और प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता था। हमारे देश में हिंदू संस्कारों में अथवा वांछित कार्य या सौदा तय होने पर और विवाह आदि के शुभ अवसरों पर पान के बीड़ों का आदान प्रदान आत्मीयता का प्रतीक माना गया है।

पीक मारने और व्यसन की आदत के कारण 1980 के मध्य दशक तक पश्चिमी साहित्य में पान खाने की कुटेव को मुख या गले के कैन्सर का कारण बताया गया है। परंतु ''कैंसर इंस्टीट्यूट ऑफ बाम्बे'' के डॉक्टर एस. वी. भिडे तथा उनके सहकर्मियों ने अपने शोध कार्य के आधार पर दर्शाया कि सुपारी में उपस्थित कुछ यौगिक विशेषकर सैफरोल और पान के साथ खाई गई तंबाकू ही मुख्यत: कैंसरजन हो सकती हैं, पान का पत्ता सर्वथा निर्दोष है।

पान के औषधीय एवं चिकित्सीय गुण :

लखनऊ में स्थित राष्ट्रीय वानस्पतिक अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिक डॉक्टर निखिल कुमार और केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान (सी.डी.आर.आई.) के अन्य वैज्ञानिकों ने ''करेंट साइंस 2010'' में प्रकाशित अपनी रिपोर्ट से पान के अनेक लाभकारी गुणों का उल्लेख किया है। इसके पहले आई. आई. टी. खडगपुर के डॉक्टर पी. गुप्ता ने ''ह्यूमन इकोलॉजी 2006'' में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी। इन दोनों रिपोर्टों में एशिया के इस हरित स्वर्ण अर्थात पान के पत्तों की खेती और इसके चिकित्सीय गुणों का उत्तम सारांश प्रस्तुत किया है। ये दोनों आलेख इंटरनेट पर उपलब्ध हैं और निशुल्क डाउन लोड किए जा सकते हैं।

पान की पत्तियों को चबाते ही इसका प्रभाव ग्रास नली से प्रारंभ हो जाता है और अपने संक्रमण रोधी गुणों के कारण श्वास को तरोताजा रखते हुए मुंह को स्वच्छ रखता है। मुखीय श्लेष्मा के माध्यम से इसके संघटक सीधे रुधिर में प्रवेश कर जाते हैं। पान की पत्ती को चबाने से लार बनना शुरू हो जाती है। लार में मौजूद प्रोटीन मुंह में उपस्थित जीवाणुओं का सामना करती है। इससे दांतों पर जमने वाली हानिकारक परत (प्लाक) में भी कमी आती है। इतना ही नहीं, पान के पत्ते में पाइपरॉल कुल के यौगिक होते हैं जो हृदस्पंद नियामक (हार्ट बीट रेगुलेटर) का कार्य करते हैं और रुधिर वाहिकाओं की जकड़न को शिथिल करने में सहायक होते हैं। पत्ते में पॉलिफिनॉलों वर्ग के एलिलपाइरो कैटिकोल, हाइड्रॉक्सिल कैबिकोल भी होते हैं जो रोगाणुओं से संघर्ष करते हैं और वेदना निवारण और शोध को कम करने में सहायक होते हैं।

बिडंबना यह है कि जिसे कभी कैंसरजन कहा जाता था उसी पान के पत्ते में ऐसे संघटक होते हैं जो कैंसररोधी सक्रियता दर्शाते हैं जिनमें युजिनॉल और हाइड्रॉक्सिल कैविकॉल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्पष्ट है, कि पान के पत्ते में ऐसे अनेक रासायनिक यौगिक मौजूद हैं जिनमें से बहुतों में अद्‌भुत चिकित्सीय गुण है।

आज रसायनज्ञ इनमें से प्रत्येक के अणुओं को विलगित करने और उन्हें पहचानने का प्रयास कर रहे हैं। इन यौगिकों के एकल अथवा मिश्रित रूप में प्रभावों का अध्ययन किया जा रहा है। इस बात की पूरी पूरी संभावना है कि प्राचीन काल से विदित भारत के इस हरित स्वर्ण के अन्य विलक्षण और आश्चर्यजनक लाभप्रद गुणों का पता चले।

घावों को भरने में :

फोड़े फुंसियों को ठीक करने और घावों को भरने के लिए पान के पत्तों का प्रयोग भारतीयों को वैदिक काल से ही ज्ञात है। वैज्ञानिकों ने पान के पत्ते के सार (निष्कर्ष) में इस गुण की पुष्टि की है। गांवों में आज भी वयोवृद्‌ध महिलाएं घाव को ठीक करने और सूजन कम करने के लिए पान के पत्ते पर सरसों का तेल लगा कर हल्का गर्म करके रात को घाव पर बांधती हैं।

निष्कर्ष :

अंतत: संदेश यह है कि पान के पत्ते को जरा सा चूना लगाकर उसी रूप में खाया जाए और सुपारी और तंबाकू का हरगिज प्रयोग न किया जाए। स्वाद को निखारने के लिए लौंग, इलाचयी और मनपसंद गुलकंद तथा सौंफ आदि का प्रयोग किया जा सकता है। पान का आनंद लीजिए पर जगह बेजगह थूकिए नहीं।

❑

11

स्वास्थ्यवर्धक मधुमक्खी उत्पाद

डॉ. एस. डी. शर्मा व डॉ. जितेंद्र कुमार

मौन विष अर्थात मधुमक्खी के डंक से प्राप्त विष से अनेक रोगों का उपचार किया सकता है। जब वृद्धावस्था में कॉलेस्टेरॉल शरीर में बढ़ जाने से शरीर के कुछ भाग सख्त पड़ने लगते हैं तो मौन विष का प्रयोग करने से कालेस्टेरॉल का स्तर रक्त में कम हो जाता है और इस रोग का इलाज हो जाता है। तनावग्रस्त लोगों के लिए मौनविष अत्यधिक उपयोगी है तथा इससे तुरंत लाभ मिलता है, सिर दर्द कम होकर कार्यक्षमता भी बढ़ती है। रॉयल जेली हृदशिरा तंत्र, जठरांत्र तंत्र, तपेदिक, गठिया आदि बीमारियों के उपचार में लाभदायक है। इसमें जैविक प्रोत्साहन प्रदान करने वाले गुण भी है। यह रक्त कोशिकाओं में वृद्धि करता है तथा अधिक तनाव से आराम दिलाती है।

मधुमक्खियों से हमें मधु के अतिरिक्त अनेक प्रकार के असाधारण गुणों वाले अन्य उत्पाद भी प्राप्त होते हैं जैसे कि मौन विष व रॉयल जेली। यदि मौनपालन का विविधीकरण करके अधिक लाभ अर्जित करना हो तो मौन विष व रॉयल जेली का उत्पादन व बिक्री करके प्राप्त किया जा सकता है। इन पदार्थों की विभिन्न क्षेत्रों में प्रबल जैविक क्रियाशीलता सिद्ध हो चुकी है। इनमें कुछ ऐसे गुण हैं जैसे कि शरीर को हृष्ट-पुष्ट रखना, जीवन-शक्ति व सामर्थ्य में वृद्धि, गठिया व जोड़ों के रोगों से राहत इत्यादि। प्रस्तुत लेख में इन उत्पादों की रचना, गुण व उपयोगों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

मधुमक्खी का दंश-विष

मधुमक्खी का डंक एक विष पोटली के साथ जुड़ा होता है जिसमें एक अत्यधिक सक्रिय जैविक पदार्थ यानी 'विष' संगृहीत होता है। छत्तों के कोष्ठों से निकली नन्हीं कमेरी मधुमक्खियाँ डंक नहीं मार सकती हैं और वे अपने डंक को अन्य प्राणियों के शरीर में डाल ही नहीं सकती हैं, क्योंकि यह पूर्ण रूप से कठोर व विकसित नहीं होता है। इसके अतिरिक्त इसमें विष की मात्रा भी काफी कम होती है। जब कमेरी मधुमक्खी की आयु 2 सप्ताह तक होती है तो उसकी विष ग्रंथियों में सर्वाधिक विष 0.1 मिलीग्राम होता है। विष का स्राव 20 दिन के बाद रुक जाता है तथा आहार एकत्र करने वाली मधुमक्खियाँ खाली हो चुकी विष पोटली को फिर से भरने में असमर्थ होती है। जो मधुमक्खियाँ शरद ऋतु में पैदा होती हैं वे बसंत ऋतु में भी विष की थोड़ी मात्रा का स्राव करने में समर्थ होती है।

संघटन व गुणधर्म : मधुमक्खी का विष अबाष्पशील प्रोटीन व वाष्पशील कार्बनिक पदार्थों का एक जलीय मिश्रण है। अवाष्पशील तत्वों में मुख्यत: कार्बोहाइड्रेट, लिपिड, एमीनो अम्ल, पेप्टाइड, प्रोटीन और एंजाइम हैं। वाष्पशील तत्वों में एथनॉल, फॉर्मिक अम्ल, एन-ब्यूटाइल एसिटेट व आइसो एमाइल एसिटेट होते हैं।

एंजाइम में मुख्यत : हाइल्यूटोनिडेस तथा फॉस-फेलाइपेस हैं। इनमें अम्लीय व क्षारीय फॉसफेटेस होते हैं। अति सक्रिय बीटा-एस्ट्रेज भी इसमें उपस्थित होता है तथा यह बीटा नैफथाइल ऐसिटेट और बीटा- नैफ्थिल साइट्रेट के साथ लगा रहता है। इसमें मुख्य पेप्टाइड मेलीटिन, ऐपामीन, सिकापिन आदि होते हैं।

मधुमक्खी का विष पारदर्शी, तेज गंध युक्त, शहद की गंध जैसा तथा कडुवे स्वाद वाला द्रव्य होता है। मैग्नीशियम फॉस्फेट, जो विष के शुष्क भाग का 0. 4 प्रतिशत होता है, अत्यधिक आरोग्यकर एवं रोगनाशी पदार्थ होता है। इसमें ताँबा व कैल्सियम सूक्ष्म मात्रा में होते हैं। ताजे विष में लगभग 38 प्रतिशत ठोस पदार्थ होते है तथा इसका आपेक्षिक घनत्व 1.31 होता है। यह अत्यधिक ऊष्मा अवरोधी होता है। यदि इसे शुष्क रूप में 10 दिन तक 100 सेंटीग्रेड तापमान पर गर्म किया जाए तो भी इसके गुणों में बदलाव नहीं आता। हिमीकरण से भी इसका आविषी प्रभाव समाप्त नहीं होता है। शुष्क अवस्था में रखने से इसकी आविषता अनेक वर्षो तक रहती है। फॉस्फोलाइपज - शुष्क विष का 8 से 14 प्रतिशत होता है। साधारण कमरे के ताप पर मौन विष एकदम शुष्क हो जाता है तथा वास्तविक तरल भाग में 50-60 प्रतिशत तक की कमी आ जाती है। मौन विष के एक डंक से कभी भी व्यक्ति की मृत्यु नहीं होती। यदि तुरन्त उपचार न किया जाए तो अतिसंवेदनशील व्यक्ति 30 मिनट के अंदर ही मर सकते है।

मधुमक्खी की विष ग्रंथियों से विष निकालने की विधियाँ :

बेनेटोन, मोर्स व स्टीवर्ट नामक वैज्ञानिकों ने कमेरी की ग्रंथि से विष निकालने के लिए सरल विधि विकसित की है। इस विधि में फ्लोर बोर्ड की तरह एक लकड़ी की चौखट में ताँबे या इस्पात के तार बिछा दिए जाते हैं जिनमें बिजली की धारा पहुंचाने और इसमें विष का संचय करने की व्यवस्था भी होती है। यह उपकरण फ्लोर बोर्ड को हटाकर उसके स्थान पर रख दिया जाता है। कमेरी को चौखट के संपर्क में आते ही बिजली का झटका लगता है। जिसके फलस्वरूप वह डंक मारती है और विष निकाल देती है। बीस मधुमक्खयों के डंको से करीब एक ग्राम विष जमा हो जाता है।

एक अन्य देहाती विधि के अनुसार मधुमक्खियों को शीशे की एक चौडे मुंह वाली जार में रखा जाता है तथा जार को फिल्टर पेपर से ढक दिया जाता है और फिल्टर पत्र पर कुछ ईथर डाल दी जाती है। ईथर के वाष्पों से मधुमक्खियां उत्तेजित हो जाती हैं और वे गुस्से में जार की दीवारों पर विष छोड देती हैं।

मौन विष के औषधीय प्रयोग :

गठिया व जोड़ों के दर्द जैसे मानव रोगों के लिए कोई भी कारगर दवाई उपलब्ध नहीं है। परंतु मधुमक्खी का दंश चिकित्सा पद्धति को अपनाकर मनुष्य के शरीर के किसी भी भाग में दर्द को कम किया जा सकता है। गठिया रोग का उपचार करने के लिए रोगी के शरीर के रोग ग्रस्त भाग पर पहले दिन एक, दूसरे दिन दो और तीसरे दिन तीन तथा 10 वें दिन 10 मधुमक्खियों से कटवाना और 4-5 दिन के अंतराल पर फिर इस प्रक्रिया को दोहराना काफी लाभदायक सिद्ध हुआ है। यह विधि कई अन्य रोगों के लिए भी प्रभावी है जैसे चेहरे का पक्षाघात, चेहरे की जकड़न , उच्च रक्तदाब, श्वसनी दमा, तंत्रिक ताप, तंत्रिक फालिज, त्रितंत्रिक शूल, प्रमस्तिष्कीय अत:शल्यता, प्रमस्तिष्कीय शिरा-अवरोध के कारण उत्पन्न पक्षाघात, कई अन्य रोग जैसे मदिरा से प्रभावित जिगर व जलोदर आदि। पुरुषों में यौन शक्तिहीनता या नपुंकसता का उपचार भी दंश वेधन से किया जा सकता है।

मधुमक्खी के दंश-विष के प्रति एलर्जी :- विषैला होने के लिए मधुमक्खी को दंश-विष की मात्रा रोगनाशक मात्रा से 10 गुणा व घातक होने के लिए 100 गुणा अधिक होनी चाहिए। जो लोग अधिक संवेदनशील होते हैं उन्हें एक ही डंक से अस्वस्थता, उल्टी होने या दस्त आने लगते हैं, परंतु अधिकतर लोग लगातार मौन के साथ कार्य करने से डंक के प्रति सहनशील हो जाते हैं। कुछ लोगों में डंक तीक्ष्ण एलर्जी उत्पन्न करता है।

मधुमक्खी के दंश-विष का उपचार: अति संवेदनशील व्यक्तियों को मौन के शरीर का अर्क बनाकर (1:1000) दिया जा सकता है जिसकी मात्रा धीरे धीरे बढ़ाई जा सकती है हिस्टेमिन क्रीम या इन्जेक्शन और एड्रीनेलिन को एलर्जी के उपचार के लिए प्रयोग किया जा सकता है। शहद, ऐथिल ऐल्कोहॉल तथा ऐस्कार्बिक अम्ल (100ग्राम + 200 मि. ली. + 1 ग्राम) को एक लिटर पानी में घोलकर एलर्जी वाले व्यक्ति को 2-3 घंटे बाद दें। डाइफेनिल हाईड्रामिन हाइड्रोक्लोराइड मधुमक्खी के दंश के उपचार के लिए अनुमोदित है। पेरोपरानोलौल दवाई भी विष के प्रभाव को कम करती है।

मधुमक्खी के दंश-विष से रोगोपचार: चमड़ी के तपेदिक में मधुमक्खी के दंश विष से बने इंजेक्शन अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं। इसके प्रयोग से कालेस्टेरॉल का स्तर भी रक्त में कम होता है। उच्च रक्त दाब के लिए मधुमक्खी का इंजेक्शन अच्छा उपचार है। तनावग्रस्त लोगों के लिए मौन विष अत्यधिक उपयोगी है तथा इससे तुरंत लाभ मिलता है, और सिर दर्द कम होकर कार्यक्षमता भी बढती है। मौन विष का प्रयोग बीमारी के आरंभ में ही करने से जोडों के दर्दों से आराम मिलता है। आँखों के रोगों के लिए भी मौन विष उपकारी है परंतु इसमें अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता है। तंत्रिका शोथ विशेषत: शिरा में जलन से पीड़ित रोगों को मधुमक्खी के विष के प्रयोग से पूर्णत: ठीक किया जा सकता है।

रायल जेली:

रॉयल जेली 6-12 दिन की आयु की कमेरी मधुमक्यिों द्वारा अधोग्रसनी ग्रंथियों से स्रावित होती है। यह रानी मधुमक्खी को डिंब तथा प्रौढ़ अवस्था में खिलाई जाती है। यह कमेरी तथा आलसी मधुमक्खी के 3 दिन की आयु तक के डिंबों को भी खिलाई जाती है। यह दूधिया तथा हल्के रंग का दृढ़ अम्लीय तथा अत्यधिक नाइट्रोजन-युक्त पदार्थ है। इसकी गंध कुछ तीक्ष्ण तथा स्वाद खट्टा कड़वा होता है।

इसका संघटन निम्नलिखित होती है :-

i) जल नमी -66.05 प्रतिशत (65 से 70 प्रतिशत)

ii) प्रोटीन - 12.34 प्रतिशत (15 से 18 प्रतिशत)

iii) कुल लिपिड-5.46 प्रतिशत (2 से 6 प्रतिशत)

iv) कुल आवश्यक पदार्थ -12.49 प्रतिशत (9 से 18 प्रतिशत)

v) भस्म - 0.82 प्रतिशत (0.7 से 1.2 प्रतिशत)

iv) अज्ञात तत्व - 2.84 प्रतिशत

रॉयल जेली में विटामिन 'बी' प्रचुर मात्रा में है। इसमें विटामिन 'सी' भी होता है। रॉयल जेली में एक अन्य पदार्थ 10 हाईड्रॉक्सी डैसीनोएक अम्ल भी होता है जिसमें जीवाणुरोधी आदि कवकनाशी गुण होते हैं।

रॉयल जेली में मुख्यत: एलनिन, आर्जिनिन, एस्पार्टिक अम्ल, ग्लूटेनिक अम्ल ग्लाइसीन, आइसोल्यूसिन, लाइसीन, मिथिओनीन, फेनिल, एलानिन, ट्रिप्टोफेन, टाइरोसिन व सेरिक एमीनो अम्ल होते हैं। मनुष्यों के लिए आवश्यक सभी अमीनों अम्ल भी रॉयल जेली में होते हैं। रॉयल जेली में उपस्थित कार्बोहाइड्रेट में ग्लूकोस, फ्रक्टोस, मेलिबायोस, ट्राइहैलोस यवशर्करा (माल्टोस) सूयूक्रोस होते हैं। इसके अतिरिक्त लोहा, ताँबा, फासफोरस, सिलिकन व गंधक भी रॉयल जेली में उपलब्ध होते है।

रॉयल जेली मधुमक्खी के समूह की रानी मक्खी बनाने के लिए मधुमक्खी को उत्तेजित करके प्राप्त होती है क्योंकि इन वंशों में से रानी निकाल ली जाती है तथा आपातकालीन रानी कोष्ठ से जेली एकत्रित कर ली जाती है। यदि मधुमक्खी के वंशजों का रखरखाव अच्छी तरह से किया जाए तो एक वंश से 5-6 महीनों में लगभग 500 ग्राम रॉयल जेली प्राप्त हो सकती है। रानी कोष्ठ में से निकलने के बाद रॉयल जेली बहुत शीघ्र ही खराब होने लगती है। इसे कमरे के ताप पर छह घंटे से अधिक नहीं रख सकते। प्रशीतक के 5 अंश सेन्टिग्रेड ताप पर रॉयल जेली को दो मास तक ठीक रख सकते हैं और अगले दो महीनों में यह धीरे-धीरे खराब होती जाती है। इसके शीघ्र खराब होने के गुण को ध्यान में रखते हुए इसे ठंडा कर जमी हुई अवस्था में सुखाकर ही भंडारित किया जाता है। जो मैनपालक रायल जली का उत्पाद करते हैं वे प्राय: इस उत्पाद को प्रशीतक में डाल देते हैं तथा जल्दी से जल्दी इसे रॉयल जेली खरीदने वाली व्यापरिक कंपनी को बेच देते हैं जो इसे सुखाकर कम तापमान पर भंडारित करते हैं।

उपयोग :

1. ताजी रॉयल जेली खाने के विशेष लाभ हैं। इससे शरीर को अधिक खाद्य घटक उपलब्ध होते हैं तथा शरीर का पाचन तंत्र इन घटकों को सुगमता से स्वीकार करने में समर्थ होता है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ऐसे कई पदार्थ बनाए गए हैं जिनमें ताजी तरल रॉयल जेली प्रयोग होती है। ये हैं - जिंगसन रॉयल जेली, जिंग्सन मिल्क वैच रॉयल जेली, जिंग्सन पाइलाज़ एंथर रॉयल जेली व वेस्टर्न जिंग्सन रॉयल जेली इत्यादि।

2. रॉयल जेली हृदशिरा तंत्र, जठरांत्र तंत्र, तपेदिक गठिया आदि बीमारियों के उपचार में लाभदायक है।

3. रॉयल जेली में जैविक प्रोत्साहन देने वाले गुण हैं। यह रक्त कोशिकाओं को बढाती है तथा अधिक तनाव से आराम दिलाती है।

4. इसका अंत: शिरा टीका लगवाने पर रक्तदाब सामान्य हो जाता है, भूख बढ़ती है, मन प्रसन्न व व्यक्ति चुस्त हो जाता है।

5. यह उपापचय क्रिया को सामान्य बनाती है, मूत्रवर्धन में सहायक है। यह मोटापे व दुर्बलता को रोकती है तथा अंत:स्रावी गंथियों के कार्य पर सुचारु रूप से नियंत्रण रखती है। यह हृद्धमनी काठिन्य में लाभदायक है।

6. यह एक टॉनिक की तरह काम करती है, भूख बढ़ाती है तथा शरीर के विकारों से छुटकारा दिलाती है।

7. इसके प्रयोग से जानवरों में नपुंसकता दूर होती है। ऐसे संकेत भी मिले हैं जिनके अनुसार इसके प्रयोग से तेजस्विता (जीवन शक्ति व सामर्थ्य) बढ़ती है और बुढ़ापा देरी से आता है।

रॉयल जेली को अकेला व शहद के साथ मिश्रण बनाकर खाया जा सकता है। शहद में लगभग 3 प्रतिशत रॉयल जेली मिलाकर 15-12 ग्राम मिश्रण प्रतिदिन लिया जाता है। रॉयल जेली के कैप्सूल भी बनाए जाते हैं।

❑

12

मर्म चिकित्सा : एक प्रभावी चिकित्सा पद्धति

डॉ. सुनील कुमार जोशी व डॉ. मृदुल जोशी

मर्मविद्या एक अत्यंत प्राचीन गुह्य वेद विद्या है। इसको अनेक ऋषियों ने अपने अभ्यास एवं ज्ञान चक्षुओं से जाना तथा लोकहितार्थ उसका उपयोग किया। प्राचीन काल में इस विद्या को गुप्त रखने का क्या उद्देश्य रहा होगा ? इसको जानने से पहले यह जानना आवश्यक है कि मर्म क्या है ? चिकित्सकों के अनुसार शरीर के वे विशिष्ट भाग जिन पर आघात करने अर्थात चोट लगने से मृत्यु संभव है, उन्हें मर्म कहा जाता है। इसका सीधा अर्थ है कि शरीर के ये भाग अत्यंत महत्वपूर्ण है तथा जीवनदायिनी ऊर्जा से युक्त हैं। इन स्थानों पर प्राणों का विशेष रूप से वास होता है। अत: इन स्थानों की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

इसके अलावा यदि इन स्थानों पर समुचित शास्त्रोक्त चिकित्सा क्रिया-विधि का उपयोग किया जाए तो शरीर को रोगमुक्त एवं चिरायु बनाया जा सकता है। साथ ही विभिन्न सुखसाध्य, कृच्छसाध्य एवं असाध्य रोगों से मुक्ति पाई जा सकती है। मर्मविद्या मर्मज्ञ विभिन्न ऋषि मुनियों ने सर्व-सामान्य के लिए सुलभ एवं उपयोगी योग-प्राणायाम से पृथक् उन लोगों के लिए मर्म विद्या / मर्म चिकित्सा का अन्वेषण किया जो निरंतर लोक कल्याण, लोकहित, लोकानन्द उपलब्ध कराने वाले समाधि और ब्रह्मज्ञान के आकांक्षी है। निरंतर जागतिक हित चिंतन में संलग्न साधकों के लिए नियमित रूप से स्थूल यौगिक आसन व्यायामादि / प्राणायाम द्वारा शरीर को स्वस्थ रखने का उपाय करना संभव नहीं है। उनको मर्म विद्या / चिकित्सा द्वारा सद्य:फल प्राप्त होता है जो शारीरिक आरोग्य, मानसिक शांति, आध्यात्मिक उन्नति एवं परमब्रह्म से तदाकार होने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है। जहां एक ओर मर्म विद्या के द्वारा लौकिक/पारलौकिक सुखों की प्राप्ति संभव है वहीं इस विद्या के दुरुपयोग से यह घातक भी हो सकती है। मर्म स्थानों पर आघात से प्रतिद्वंद्वी की मृत्यु भी संभव है। अत: मर्म चिकित्साविद् के अतिरिक्त यह विद्या राजाओं एवं योद्धाओं को ही सिखाई जाती थी। यही इस विद्या को गुप्त रखने का रहस्य है। अभी तक मर्म विज्ञान के विषय में अधिक जानकारी न होने के कारण इस महत्वपूर्ण विद्या का प्रचार प्रसार नहीं हो पाया।

मर्म परिचय एवं मर्म परिगणन -

मर्म चिकित्सा, आयुर्वेदीय शल्य तंत्र का एक ऐसा अनछुआ पृष्ठ है जिसके द्वारा शल्य चिकित्सा का संपूर्ण परिदृश्य परिवर्तित हो सकता है। जिस प्रकार आत्मसाक्षात्कार, समाधि एवं मोक्ष प्राप्ति के साधन योग को जन स्वास्थ्य संवर्धन के महत्वपूर्ण शस्त्र/उपाय के रूप में मान्यता मिल चुकी है, उसी प्रकार मर्म चिकित्सा का उपयोग विभिन्न शस्त्र रोगों में अत्यंत उपयोगी है।

मर्म का शाब्दिक अर्थ स्वरूप, तत्व, सार, संधि स्थान एवं जीव स्थान से है। आयुर्वेद शास्त्रों में **'मारयन्तीति मर्माणि'** कहा गया है अर्थात् जिसमें आघात लगने से मृत्यु हो सकती है। मर्म एक सौ सात होते हैं। वे पंचात्मक होते हैं, मांसमर्म, शिरामर्म, स्नायुमर्म, अस्थिमर्म और संधिमर्म। वास्तव में मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधि के अतिरिक्त मर्म होते ही नहीं हैं।

मर्म चिकित्सा के सिद्धांत -

मर्म शरीर के अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान हैं। उस स्थान पर आघात से विभिन्न प्रकार के दोष एवं उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। सद्य: प्राणहर मर्म पर हुए आघात का सार्वदैहिक प्रभाव पड़ता है अर्थात् यह भाग इतना महत्वपूर्ण हैं कि इस पर हुआ आघात संपूर्ण जीवनी शक्ति को प्रभावित करता है। यह सत्य है कि मर्म पर आघात होने से मृत्यु संभव है। परंतु मर्म जीवनी ऊर्जा के केंद्र है, मर्म प्राण को धारण करते हैं। इन स्थानों पर विभिन्न प्रकार के उपक्रम करने पर विभिन्न रोगों में आशातीत लाभ होता है। सुश्रुतोक्त षष्टि उपक्रमों में वर्णित अभ्यंग, परिसेक, आलेप, विम्लापन, पीडन, वेद्य आदि से मर्म चिकित्सा की जा सकती है।

स्वास्थ्य रक्षण एवं स्वास्थ्य संवर्धन हेतु दैनिक स्व-मर्म चिकित्सा

आज के अत्यंत व्यस्त दिनचर्या में व्यायाम के लिए समय निकालना संभव नहीं हो पाता है। साथ ही जीवनचर्या के परिवर्तन से होने वाले रोगों से बचाव भी अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए अत्यंत प्रभावशाली एवं सद्य:फलदायी मर्म चिकित्सा विधि का दैनिक अभ्यास निश्चय ही फलदायी है-

1. इसके लिए प्रात:काल मलत्याग एवं स्नानोपरांत एवं सायंकाल व्यक्ति को सुखासन, पद्मासन में मेरुदंड को सीधा कर बैठना चाहिए। सुखपूर्वक बैठने के पश्चात् संपूर्ण शरीर को शिथिल करने एवं ऊर्जा का प्रवाह सम्यक् रूप से होने के लिए गहरी-गहरी सांस लेनी चाहिए।

2. मर्म चिकित्सा से पूर्व ढीले कपड़े पहनने चाहिए। विशेष रूप से जुराब, अंडरवीयर, टाई आदि द्वारा शरीर के ऊपर कोई भी दबाव नहीं पड़ना चाहिए।

3. तत्पश्चात् पुरुष द्वारा प्रथम अपने बांए हाथ को दांए कंधे पर रख कर तर्जनी मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से दाएं अंस मर्म को 10-15 बार दबाना चाहिए। इसी तरह से फिर दाएं हाथ को बांए कंधे पर रखकर बांए अंस मर्म को दबाना चाहिए। स्त्रियों को प्रथम बाएं अंस फिर दाएं अंस मर्म को दबाना चाहिए।

4. अंस मर्म के पश्चात् पुरुष द्वारा बाएं हाथ की अंगुलियों द्वारा दाएं उपरिबाहु के आणि, ऊर्वी, कूर्पर, इंद्रबस्ति, मणिबंध, कूर्चसिर, कूर्च एवं क्षिप्र प्रत्येक मर्म को कम से कम 5 बार अवश्य दबाना चाहिए। फिर बांए हाथ की अंगुलियों द्वारा दाएं उपरिबाहु के मर्मो को दबाना चाहिए। स्त्रियों को प्रथम बाएं फिर दांए हाथ के मर्मो को उत्परित करना चाहिए।

5. अधोशाखा के मर्मो के उत्प्रेरण के लिए सर्वप्रथम वज्रासन में बैठना चाहिए। फिर एक शाखा टांग को सीधा फैलाना चाहिए। मेरुदंड को सीधा रखते हुए एवं सामान्य श्वास-प्रश्वास की क्रिया करते हुए मर्म उत्प्रेरण जंघा से नीचे की ओर करना चाहिए। इसका क्रम ध्यान रहे कि दोनों एडियां कुकुंदरास्थि को स्पर्श करती रहें। कमर को उपर उठाते हुए पुन: नितंब को एडियों पर रखना चाहिए। यह प्रक्रिया पांच से दस बार तक दोहरानी चाहिए। इसके पश्चात एक टांग को पैतालीस अंश के कोण पर सीधा फैलाकर मर्म उत्प्रेरण जंघा से नीचे की ओर प्रारंभ करना चाहिए। **ऊर्वी, आणि, जानु, इन्द्रबस्ति, गुल्फ, कूर्चशिर, कूर्च, तल हृद्य और क्षिप्र मर्म** को क्रमश: दोनों हाथों की अंगुलियों, अंगूठे और हस्त तल से आवश्यकतानुसार उत्प्रेरित करना चाहिए। इसी तरह अधोशाखा के मर्मो के उत्प्रेरण के लिए पद्मासन में बैठकर भी दोनों हाथों की अंगुलियों से पाद तल के क्षिप्र, कूर्च, कूर्चशिर, को आसानी से दबाया जा सकता है।

6. अध:शाखा के अन्य मर्मो को उत्प्रेरित करने हेतु वज्रासन एवं सुप्त वज्रासन करना चाहिए। इससे उदर एवं पृष्ठ के मर्म भी उत्प्रेरित होते है।

7. सर्वांगासन एवं पश्चिमोत्तानासन द्वारा ग्रीवा, सिर, पृष्ठ एवं उदर के मर्म उत्प्रेरित होते है।

8. प्रतिदिन इन मर्म स्थानों पर बादाम रोगन अथवा वातनाशक तैल द्वारा मर्दन करना चाहिए।

दैनिक जीवन में मर्मो को प्रभावित करने वाले कार्य :-

1. खड़ाऊ पहनने से क्षिप्रमर्म पर दबाव से नियंत्रण द्वारा ब्रह्मचर्य एवं मनोनिग्रह संभव है।

2. मल-मूत्र त्याग के समय यज्ञोपवीत द्वारा दक्षिण कान का बंधन।

3. भ्रूमध्य में तिलक, रोली, चंदन का धारण।

4. स्त्रियों द्वारा भ्रूमध्य में बिंदी एवं सीमांत में सिंदूर का धारण।

5. पुरुषों द्वारा सिर के ऊपरी पृष्ठ भाग में चोटी रखना।

6. मुस्लिम समुदाय के व्यक्तियों द्वारा नमाज पढ़ते समय विशेष रूप से बैठने का ढंग अद्य:शाखा के मर्मो को प्रभावित करता है।

वैदिक चिकित्सा संबंधी आचार सूत्र

मनुष्य के इस धरा पर प्रादुर्भाव से पहले सृष्टि का निर्माण हो गया था। इसमें मनुष्य के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध थे। जिनमें भोजन और स्वास्थ्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के संसाधन महत्वपूर्ण है। तत्संबंधी ज्ञान के क्रम को पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ाने के लिए विविध प्रकार के उपाय प्रचलित हुए। इसके लिए विशिष्ट मानक और आचार संहिता उपलब्ध हैं। कोई भी कार्य एक विशिष्ट विधि और अनुशासन के माध्यम से ही संभव है इसी के अंतर्गत चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन, अध्यापन प्रारंभ हुआ। चिकित्सा कार्य अत्यंत पुनीत और पुण्यदायक कार्य है।

वैदिक चिकित्सा विज्ञान: आचार संहिता के सूत्र

अमृत के समान प्रभाव वाली औषधियाँ, अज्ञान मनुष्यों द्वारा प्रयोग किए जाने पर शस्त्र, बिजली और विष के समान घातक होती है अत: ऐसे चिकित्सकों का परित्याग करना चाहिए। मर्म चिकित्सा के संदर्भ में यह सूक्त अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि मर्म चिकित्सा का प्रभाव/दुष्प्रभाव औषधियों के मुकाबले कई गुणा ज्यादा है। जो चिकित्सक शास्त्र और उसके प्रयोग (कर्म) को भली भाँति जानता है वह आरोग्य प्रदान करने में समर्थ है।

मर्म चिकित्सा द्वारा ठीक होने वाले रोग इस प्रकार है :-

खेलकूद के दौरान चोटें या अन्य क्षति
रीढ़ या मेरुदंढ में होने वाली क्षति
मेरुरज्जु संबंधी क्षति या विकार
गृध्रसी या शियाटिका
अचल स्कंध (कंधे में जकड़न)
अभिधातन अधरांगघात (ट्रामैटिक पैरेप्लेजिया)
मणिबंध नलिका संलक्षण (कार्पल टनेल सिन्ड्रोम)
अंतरा कशेरुका चक्रिका का भ्रंश (प्रोलैप्स ऑफ इटरवर्टिब्रल डिस्क)
अस्थिसंधि शोध (ऑस्टियो आर्थ्राइटिस)
रुमेटी संधिशोध (रूमेटॉयड आर्थ्राइटिस)
प्रमस्तिक अंगघात (सेरेब्रल पाल्सी)
ग्रीवा कशेरुका संधिशोध (सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस)
यकृत वृद्धि
प्लीहा अतिवृद्धि
तंत्रिकाशोथ (न्यूराइटिस)
चिरकारी अग्न्याशय- शोथ (क्रॉनिक पैन्क्रिएटाइटिस)
माइग्रेन
आनन अंगघात (फेसियल पैरेलाइसिस)
कर्णक्ष्वेण (टिनिटस)

❑

13

प्रकृति का अद्भुत वरदान - घृतकुमारी

डॉ. रीति थापर कपूर

मानव और प्रकृति का अटूट संबंध है। मनुष्य शैशवकाल से लेकर वृद्धावस्था तक प्रकृति की गोद में पलता-बढ़ता है और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रकृति ही मानव का पालन-पोषण करती है। मानव द्वारा विभिन्न रोगों के इलाज हेतु पौधों के प्रयोग का इतिहास बहुत पुराना है, किंतु प्रागैतिहासिक काल में घटनाओं को लिपिबद्ध करने का साधन न होने से आज हमें यह ज्ञात नहीं है, कि आरंभ में रोग और उसके निवारण के लिए मानव की क्या धारणाएं थी? किंतु जब से घटनाओं के प्रमाण मिलते हैं, उससे यह ज्ञात होता है, कि पुरातन काल में भी मानव अनेक रोगों के निवारण हेतु विभिन्न पौधों का औषधि के रूप में उपयोग करता था। भारत में रोगों के निवारण के लिए पौधों के प्रयोग का सर्वप्रथम वर्णन ऋग्वेद में मिलता है, तत्पश्चात् भारतीय वनौषधियों पर दो अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता सामने आए, जिनमें अनेक औषधीय पौधों का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है।

घृतकुमारी एक उपयोगी औषधीय वनस्पति है, जिसका प्रयोग प्राचीन काल से विश्व की अनेक प्रचीन देशज चिकित्सा पद्धतियों में होता रहा है। यह पौधा लिलीएसी कुल का सदस्य है और इसका वानस्पतिक नाम **सेविला बारबाडेन्सिस है**। अंग्रेजी भाषा में सामान्यत: हम इसे ऐलोवेरा के नाम से जानते हैं। इस पौधे की उत्पत्ति अफ्रीका में हुई किंतु हर प्रकार के वातावरण में रह सकने के कारण यह पौधा विश्व के लगभग सभी देशों में पाया जाता है। इस वनस्पति को विश्व के विभिन्न देशों में अलग-अलग नामों द्वारा पहचाना जाता है, जैसे यूनानी भाषा में इसे मूसाबारा, फारसी में सीबरा, अरबी भाषा में सीबा आदि। हमारे देश में भी इस वनस्पति के विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में अलग-अलग नाम हैं। संस्कृत भाषा में इस कुमारीसार, कन्यासार, हिंदी में काला सुहागा, घीकुआर, बंगला में मोसाबारा, उड़िया में कुमारी और गुजराती में कुमारपाथु और कंवार आदि नामों से पुकारा जाता है।

घृतकुमारी का इतिहास

प्राचीन काल से ही घृतकुमारी का उपयोग प्राथमिक चिकित्सा के रूप में होता आया है। विश्व के अनेक क्षेत्रों में घृतकुमारी के उपयोग के प्रमाण मिलते है। सिकंदर ने अपने घायल सैनिकों को लगे घावों के उपचार के लिए इसका व्यापक रूप से उपयोग किया था। ईसा से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व यूनानी वैद्य घृतकुमारी के औषधीय गुणों से परिचित थे। दसवीं शताब्दी में यूरोपवासी इस पौधे का उपयोग अनेक रोगों के इलाज में करते थे। मिस्र की रानियाँ भी इस पौधे से बनाये गए अनेक प्रकार के सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग किया करती थीं।

घृतकुमारी पौधे की संरचना

घृतकुमारी का पौधा गर्म स्थानों एवं रेतीली और बंजर भूमि पर आसानी से उग जाता है। इस पौधे को वृद्धि के लिए नमी की आवश्यकता नहीं होती है। यह

पौधा 60 से 100 सेंटीमीटर तक लंबा होता है। इसकी पत्तियाँ मोटी, चिकनी, हरी, लंबी और मांसल होती हैं। नुकीली पत्तियों के किनारों पर छोटे-छोटे काँटे भी पाए जाते हैं। ये पत्तियाँ दो फुट तक लंबी और चार इंच तक चौड़ी होती हैं। ये पत्तियाँ भार में लगभग 700 से 750 ग्राम तक होती हैं। सामान्यत: एक से दो वर्ष तक की आयु के पौधों को ही मुख्य रूप से औषधियों के निर्माण में प्रयोग में लाया जाता हैं। घृतकुमारी की पत्तियों में एक विशेष प्रकार का लिसलिसा गूदा पाया जाता है, इसे हम जेल कहते हैं। यह पारदर्शी होता है और इसमें लगभग 96 प्रतिशत पानी पाया जाता है। घृतकुमारी के इस जेल का उपयोग विभिन्न प्रकार की औषधियों के निर्माण में किया जाता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि जब पत्तियों से जेल को निकालें, तो इस जेल को दो घंटे के भीतर ही उपयोग में लाना चाहिए, क्योंकि वातावरण में अधिक देर तक रहने के कारण इसके जेल का ऑक्सीकरण हो जाता है और इसके औषधीय गुण समाप्त हो जाते हैं। यदि इस जेल को अधिक समय तक सुरक्षित रखना हो, तो इसे कम ताप पर रेफ्रिजरेटर में रखना चाहिए, जिससे इसके रासायनिक गुण समाप्त नहीं होते। इस पौधे को घर के भीतर या बाहर गमले में भी आसानी से उगाया जा सकता है। अत: इस पौधे को सामान्यत: 'घर का वैद्य' के नाम से भी जाना जाता है।

घृतकुमारी में पाए जाने वाले रासायनिक तत्व

घृतकुमारी पौधे में अनेक प्रकार के ग्लूकोसाइड, रेजिन, सुगंधित तेल और गैनलिक अम्ल आदि पाए जाते हैं। इस पौधे के गूदे में अनेक प्रकार के आवश्यक खनिज जैसे- कैल्सियम, सोडियम, पोटैशियम, ताँबा, क्रोमियम, जस्ता, मैंगनीज और मैग्नीशियम और अनेक ऐन्टीऑक्सीडेंट आदि पाए जाते हैं। इसके गूदे में अनेक प्रकार के पॉलीसैकेराइड भी पाए जाते हैं, जो लंबे समय तक इस पौधे की नमी को बनाए रखते हैं। घृतकुमारी के इस विशेष गुण एवं सौंदर्यरक्षक तत्वों के कारण आज आधुनिक सौंदर्य-प्रसाधन बनाने वाली सैकड़ों कंपनियाँ इसका उपयोग विभिन्न प्रकार से उत्पादों के निर्माण में कर रही हैं। घृतकुमारी में अनेक प्रकार के आवश्यक एमीनो अम्ल पाए जाते हैं, जो मनुष्य के लिए स्वास्थ्यवर्धक होते हैं और रोग-प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं। इस पौधे में अनेक प्रकार के सैपोनिन नामक रसायन भी पाए जाते हैं, जो कि विभिन्न जीवाणुओं और विषाणुओं से शरीर की रक्षा करते हैं। घृतकुमारी में पाए जाने वाले लिग्निन नामक पदार्थ भी त्वचा में एकत्रित अनेक आविषी तत्वों को दूर कर त्वचा को विशेष आभा प्रदान करते हैं। इस पौधे के इन्हीं विशेष औषधीय गुणों के कारण इसे अमृत - संजीवनी के नाम से भी जाना जाता है। घृतकुमारी के पौधे का उपयोग हर आयु एवं वर्ग के लोग आसानी से कर सकते हैं।

सौंदर्य-प्रसाधनों के निर्माण में घृतकुमारी का बढ़ता प्रयोग

घृतकुमारी में पाए जाने वाले औषधीय एवं सौंदर्य रक्षक तत्वों के कारण विश्व के सभी विकसित एवं विकासशील देशों में इसकी माँग बहुत तेजी से बढ़ रही है। हाल ही में अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनी एलाकार्प और ब्रिटिश बहुराष्ट्रीय कंपनी फारएवर ने इसके विभिन्न उत्पादों के निर्माण की तकनीक को पेटेन्ट कराया है। आज अमेरिका बाजारों में बिकने वाली लगभग 90 प्रतिशत सौंदर्य सामग्रियाँ में घृतकुमारी का प्रयोग हो रहा है।

घृतकुमारी के औषधीय गुण

घृतकुमारी को प्राचीन काल से ही एक औषधीय वनस्पति के रूप में जाना जाता रहा है। जैसा कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा है कि शरीर में भगवान का निवास है और इसको स्वस्थ रखना हम सबका पहला धर्म है। 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' अत: आज लोग शरीर को स्वस्थ्य रखने के लिए घृतकुमारी का सेवन विभिन्न रूपों में कर रहे हैं-

1. घृतकुमारी के रस को गाजर एवं नींबू के रस के साथ मिश्रित कर सेवन करने से यह कैंसर की रोकथाम में सहायक है।

2. मधुमेह के रोगी यदि चार चम्मच आंवला के रस को लगभग दस ग्राम घृतकुमारी जेल के साथ मिश्रित करके सुबह खाली पेट पिएं तो घृतकुमारी मधुमेह को जड़ से समाप्त कर देता है।

3. घृतकुमारी के जेल में यदि बराबर मात्रा में चीनी मिलाकर इसका सेवन करें, तो यह औषधि पेट के दर्द के निवारण में सहायक होती है।

4. घृतकुमारी का रस रक्त को साफ करने का भी कार्य करता है। इस पौधे का रस रक्त की कमी एवं विटामिनों की कमी से होने वाले रोगों के इलाज में विशेष लाभदायी होता है।

5. आधा चम्मच घी में लगभग दो चम्मच घृतकुमारी के जेल को हल्की आँच पर गर्म कर इस मिश्रण को दिन में तीन बार लिया जाए तो इससे सामान्य सर्दी जुकाम में विशेष लाभ पहुँचता है।

6. आँवले के चूर्ण में घृतकुमारी के जेल को मिलाकर सेवन करने से रक्तदाब की समस्या से मुक्ति मिल जाती है।

7. घृतकुमारी के जेल में हल्दी पाउडर को मिलकर घाव पर लगाने से घाव जल्दी ठीक हो जाता है।

8. शरीर के दर्द में घृतकुमारी के जेल की मालिश में विशेष लाभकारी होती है। साथ ही शरीर के किसी भाग के जल जाने पर घृतकुमारी के जेल का उपयोग जले हुए घाव को ठीक करने में सहायता करता है।

9. नारियल के रस में घृतकुमारी के रस को मिश्रित कर सेवन करने से यह पेट में होने वाली जलन को दूर करता है। आजकल वैज्ञानिकों द्वारा घृतकुमारी के बीजों से जैव ईंधन बनाने पर भी विचार किया जा रहा है।

10. जापान में घृतकुमारी के रस का उपयोग फेफड़े के कैंसर के इलाज में किया जा रहा है और इसके अनेक सकारात्मक परिणाम भी सामने आए हैं।

11. वैज्ञानिकों द्वारा हाल ही में की गई शोध के अनुसार, घृतकुमारी एड्स के रोगियों के लिए रामबाण औषधि सिद्ध हुई है। घृतकुमारी में टी 4 कोशिकाएं होती हैं, जो कि श्वेत रक्त-कणिकाओं का शीघ्रता से बहुगुणन करती हैं, और रोग से ग्रसित पुरानी मृत कोशिकाओं को नष्ट करती हैं और धीरे-धीरे ये पूर्ण रूप से एच. आई.वी. के संक्रमण को समाप्त करती है।

12. दिल्ली स्थित आयुध कार्यिकी एवं तत्संबंधी विज्ञान संस्थान (डी. आई. पी. ए.एस) के वैज्ञानिकों के अनुसार घृतकुमारी के गूदे से एक विशेष प्रकार की दवा तैयार की जाती है, जो अत्यधिक ठंड के प्रभाव से होने वाले त्वचा के गलन से संबंधित घावों के उपचार के लिए बहुत उपयोगी है। तदनुसार इस दवा के प्रयोग से देश की सुरक्षा में बर्फीले इलाकों में तैनात भारतीय सैनिकों की चमड़ी में होने वाली गलन को उपचारित कर सैनिकों को विकलांगता से बचाना संभव हो पाया है।

अंत में हम यह कह सकते हैं, कि गुणों की खान-घृतकुमारी के उत्पादन से न केवल हम आर्थिक रूप से लाभ कमा सकते हैं, वरन् अनेक प्रकार के घातक रोगों के लिए औषधि भी प्राप्त कर सकते हैं। अत: आज इस उपयोगी औषधीय पौधे को अधिक से अधिक स्थानों पर उगाने की आवश्यकता है। वास्तव में घृतकुमारी का संवर्धन, पर्यावरण-संरक्षण की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

❑

विज्ञान गरिमा सिंधु

14

वनस्पतियों का हिंदी भाषा में योगदान

प्रो. श्रीकृष्ण महाजन, रवीना महाजन एवं पूर्वा महाजन

किसी भी भाषा की रचना हेतु मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग आवश्यक माना जाता है। क्योंकि ये दोनों भाषा को सजीव, प्रवाहपूर्ण एवं आकर्षक बनाने में पर्याप्त रूप में सहायक होते हैं। यही कारण है कि हिंदी भाषा में विभिन्न मुहावरों एवं लोकोक्तियों का अक्सर प्रयोग होते हुए देखा गया है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों की रचना में एक विशेष बात यह देखी गई है कि अक्सर उनमें पादपों के नामों, पादप भागों या उनसे निर्मित वस्तुओं की मदद ली गई है। इस दृष्टि से एक सर्वेक्षण में यह पाया गया है कि कुल मिलाकर 145 से अधिक मुहावरों और लोकोक्तियों के उदाहरण ऐसे हैं, जिनमें हिंदी साहित्यकारों ने 30 से भी अधिक पादपों के नाम या उनके भागों आदि का उल्लेख किया है। जिससे ज्ञात होता है कि पादपों ने न केवल मानव की रोटी, कपड़ा व मकान जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति की है अपितु भावों या विचारों की अभिव्यक्ति के लिए बोलचाल की भाषा में भी कुछ अंश तक उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

'मुहावरा' शब्द अरबी भाषा से लिया गया है, जिसका अर्थ है- अभ्यास। मुहावरा अतिसंक्षिप्त रूप में होते हुए भी बड़े भाव या विचार को प्रकट करता है। जबकि 'लोकोक्तियों' को 'कहावतों' के नाम से भी जाना जाता है। साधारणतया लोक में प्रचलित उक्ति को लोकोक्ति नाम दिया जाता है। कुछ लोकोक्तियां अंत:कथाओं से भी संबंध रखती हैं, जैसे- 'भगीरथ प्रयास अर्थात जितना परिश्रम राजा भगीरथ को गंगा के अवतरण के लिए करना पड़ा, उतना ही कठिन परिश्रम करना। संक्षेप में कहा जाए तो मुहावरे वाक्यांश होते हैं, जिनका प्रयोग क्रिया के रूप में वाक्य के बीच में किया जाता है, जबकि लोकोक्तियां स्वतंत्र वाक्य होती हैं, जिनमें एक पूरा भाव छिपा रहता है।

उपर्युक्त सर्वेक्षण में जिन पादपों का मुहावरों एवं लोकोक्तियों में प्रयोग किया गया है, उनके सामान्य नाम और वैज्ञानिक नाम (कोष्ठक में) क्रमश: इस प्रकार है- राई (ब्रैसिका जन्सिया), सरसों (बैसिका कैम्पेस्ट्रीस), तिल (सिसेमम इंडिकम), चना (साईसर एरेटिनम), करेला (मोमोरडिका चेरेन्शिया), नीम (मिलिया अजडिरेक्टा), जीरा (क्यूमिनम साइमिनम), खरबूजा (कुकुमिस मेलो), आम (मेंजिफेरा इंडिका), खजूर (फिनिक्स सिल्वेस्ट्रीस), गेहूँ (ट्रीटकम वल्गेर), तंदुल/चावल (ओराईजा सेटाइबा) मूली (रेफेनस सटाइवस), मसूर (लेन्स कुलिनेरिस), अरहर (कैजेनस इंडिकस), बबूल (एकेसिया अरेबिका), मूँग (फेसिओलस आरियस), ढाक (ब्युटिया मोनोस्पर्मा), गूलर (फाइसकस ग्लोमेरेटस), अनार (प्यूनिका ग्रेनेटस), बेर (जिजिपस जुजुबा), गाजर (डौकस केरोटा), बाँस (डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रीकट्स), बैंगन (सालेनम मेलोन्जीना), लौकी (लेजिनेरिया वल्गेरिस), मिर्च (कप्सीकम फ्रुटेसन्स), कपास (गौसिपियम हर्बेसियम) आदि। साथ ही कहीं-कहीं पर पादप भागों जैसे- जड़, डाल, पात एवं लकड़ी आदि शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। अन्य स्थानों में पादप उत्पादों जैसे आटा, रोटी, दाल, खीर, तेल, खिचड़ी, कागज, नाव, गाड़ी, लाठी, पगड़ी, बीन, खूँटा, झोपड़ी, टोपी, आदि का प्रयोग भी किया गया है।

चना, मूँग, मसूर, अरहर, बबूल, ढाक जैसे सदस्य वनस्पति जगत में फली वाले समूह अर्थात लेग्युमिनोसी कुल से संबंधित हैं। इसी प्रकार से गेहूँ, तंदुल (चावल), बाँस, धान समूह (ग्रेमिनी कुल), सरसों, राई, मूली, सरसों कुल (क्रुसीफेरी) और करेला, लौकी तथा खरबूजा कद्दू कुल (कुकुरबिटेसी) से संबंधित है। इन तीनों पादप कुलों में तीन या तीन से अधिक पादप जातियों का प्रयोग मुहावरों एवं लोकोक्तियों में किया गया है। इसके अतिरिक्त गाजर एवं जीरा को धनिया कुल (अम्बेलीफर) एवं बैंगन तथा मिर्च को आलू कुल (सोलेनेसी) कुल में रखा गया है, जबकि नीम, अनार, गूलर, आम, तिल, खजूर, बेर जैसे सदस्यों को क्रमश: मिलीएसी, प्यूनिकेसी, मोरेसी, एनाकार्डेसी, पेडालीयेसी, पामेसी एवं रेमनेसी कुलों में रखा गया है। विश्लेषण करने पर यह पाया गया है कि कुल मिलाकर जिन 30 पादप जातियों का उल्लेख मुहावरों एवं लोकोक्तियों में अभी तक किया गया है, वो वनस्पतियों के 13 कुलों एवं 29 प्रजातियों से संबंधित हैं। जिन मुहावरों एवं लोकोक्तियों में पादपों का सहारा लिया गया है, उसमें से कुछ उदाहरण उनके (अर्थो सहित) यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि हिंदी साहित्यकारों ने हिंदी भाषा की रचना को प्रभावशाली बनाने में 'पेड़-पौधों' की मदद भी पर्याप्त रूप से ली है, जो वास्तव में महत्वपूर्ण है और इसे वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अनदेखा नहीं किया जा सकता।

यहां कुछ ऐसे मुहावरे प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिनमें पादपों का प्रयोग किया गया है, जैसे: लोहे के चने चबाना (बहुत कठिन काम करना), राई का पहाड़ बनाना (छोटी बात को बढ़-चढ़ा कर कहना), बाँसों उछलना (बहुत प्रसन्न होना), थाली का बैंगन (अस्थिर विचार वाला), दाल न गलना (काम न बनना), तिल का ताड़ करना (जरा सी बात को बढ़ा-चढ़ा कर कहना), तिल धरने की जगह न होना (बहुत भीड़ होना), नाकों चले चबाना (बुरी तरह तंग करना), नमक-मिर्च लगाना (बातों को बढ़ा-चढ़ा कर कहना), टोपी उछालना या पगड़ी उछालना (अपमाना करना), चादर देखकर पाँव पसारना (अपनी योग्यता के अनुसार खर्च करना), चोली-दामन का साथ (गहरा संबंध), छाती पर मूंग दलना (सामने ही ढिठाई करना), कागजी घोड़े दौड़ाना (केवल लिखा-पढ़ी करना), गुड़-गोबर करना (बना बनाया काम बिगाड़ देना), गुदडी का लाल (छिपा हुआ गुणवान व्यक्ति), गूलर का फूल (अप्राप्य वस्तु), अंधे की लकड़ी (एकमात्र सहारा), आटा गीला होना (मुसीबत में और मुसीबत आना), एक लकड़ी से हांकना (अच्छे-बुरे के साथ एक जैसा व्यवहार करना), घास खोदना (व्यर्थ में समय नष्ट करना, तुच्छ काम करना), टेढी खीर होना (काम का बहुत कठिन होना), पगड़ी संभालना (मान-मर्यादा की रक्षा के लिए तैयार हो जाना), खटाई में पड़ना (झमेले में पड़ना), खिचड़ी पकाना (गुप्त रूप से कार्य करना), आदि।

इसके अतिरिक्त जिन लोकोक्तियों में पादपों का किसी न किसी प्रकार से प्रयोग किया गया है, उनके कुछ नमूने इस प्रकार हैं जैसे- आम के आम गुठलियों के दाम (दोहरा लाभ), अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता (अकेला व्यक्ति कोई बड़ा काम नहीं कर सकता), ऊँट के मुंह में जीरा (अधिक वाले को थोड़ी-सी चीज मिलना), एक अनार सौ बीमार (वस्तु कम, चाहने वाले अधिक); एक करेला, दूसरा नीम चढ़ा (एक दोष का तो पहले से होना, साथ ही एक और लग जाना), उल्टे बांस बरेली को (विपरीत कार्य), खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है (एक शरारती का असर दूसरे पर भी पड़ता है), गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता है (बड़े के साथ रहने से छोटे को भी हानि उठानी पड़ती है), थोथा चना बाजे घना (थोड़े गुण अथवा धन वाला

व्यक्ति घमंड अधिक करता है), ढाक के तीन पात (एक सी हालत में रहना), यह मूंह और मसूर की दाल (अयोग्य होने के बावजूद विशेष वस्तु की इच्छा रखना), हथेली पर सरसों नहीं जमती (समय पर ही होने वाला काम शीघ्र नहीं किया जा सकता), न साँप मरे न लाठी टूटे (हानि भी न हो और दुष्ट भी नष्ट हो जाए), न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी (असंभव शर्त पूरी न होने पर अभीष्ट काम भी नहीं होता), तू डार-डार, मैं पात-पात (यदि तुम चालाक हो तो मैं तुमसे भी अधिक चालाक हूँ), जिसकी लाठी उसकी भैंस (राज्य या वस्तु पर शक्तिशाली का ही अधिकार होता है), घर की मुर्गी दाल बराबर (सहज प्राप्त वस्तु को लोग महत्व नहीं देते), घर आए नाग न पूजिए बाँबी पूजन जाए (प्रस्तुत फलदाता को छोड़कर अप्रस्तुत को महत्व देना), कभी नाव गाड़ी पर कभी गाड़ी नाव पर (समय-समय पर दो व्यक्ति एक-दूसरे के सहायक बन जाते हैं), कंगाली में आटा गीला (गरीबी में और अधिक हानि होना), अंधा बाटे रेवडियाँ फिर-फिर अपने को ही देय (पक्षपाती व्यक्ति बार-बार अपने को ही लाभ पहुंचाता है), अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत (हानि हो जाने पर बाद में पछताने से क्या लाभ), अरहर की टट्टी गुजराती ताला (छोटे से कार्य के लिए बड़ा प्रबंध), आकाश से गिरा खजूर में अटका (एक कठिनाई के उबरने के बाद भी दूसरी बाधा उपस्थित हो जाना), आटे-दाल का भाव मालूम होना (कठिनाइयों का अनुभव होना) और आम खाने हैं कि पेड़ गिनने हैं (मूल लक्ष्य की ओर ध्यान न देकर इधर-उधर के तर्क करना) आदि।

मुहावरों और लोकोक्तियों के अन्य उदाहरण जिनमें पादपों का उपयोग किया गया है विस्तृत रूप से इस प्रकार हैं जैसे- अंधेर नगरी चौपट राजा, टका सेर भाजी टका खेर खाजा (अन्याय का बोलबाला, जहां मालिक मूर्ख होता है, वहां अंधेर ही अंधेर होता है), गाजर मूली समझना (अत्यंत तुच्छ समझना), घर खीर तो बाहर खीर (घर में आदर तो बाहर सादर, घर में किसी वस्तु का अभाव न हो तो बाहर भी नहीं होता), जड़ जमना (स्थायी होना), डूबते को तिनके का सहारा (निराशा में आशा की झलक), तेल तिली से निकलता है (खर्च उसी में से निकालना), दाँत काटी रोटी (गहरी मित्रता), दाल में काला (संदेह की बात), दो नावों में बैठना (दो भिन्न-भिन्न पक्षों को अपनाना), नई नाईन बाँस का नहन्ना (अनुभवहीन व्यक्ति का कार्य), लकड़ी के बल बंदरिया नाचे (भय से काम करना), लाल झंडी दिखाना (कार्य रोकना), होनहार बिरवान के होत चीकने पात (योग्य व्यक्ति में उन्नति के लक्षण पहले से विदित हो जाते हैं), सुदामा के तंदुल (साधारण भेंट), शबरी के बेर (तुच्छ भेंट) और द्रौपदी का चीर (असमाप्त वस्तु), तेली का तेल जले मशालची का दिल फटे (एक के दान या व्यय करने पर दूसरे को दु:ख या ईर्ष्या होना) दाल भात में मूसरचंद (अवांछित व्यक्ति का बीच में आना या उसके द्वारा बातचीत में हस्तक्षेप), दूध का दूध पानी का पानी (विवेकजन्य न्याय), दूर के ढोल सुहावने (वास्तविक अनुभव से पहले बहुधा चीजें अच्छी लगती हैं), नया मुसलमान प्याज अधिक खाता है (नये मत या सिद्धांत पर बहुत जोश होता है), पढ़े फारसी, बेचे तेल- यह देखो कुदरत का खेल (पढ़ लिख कर योग्यतानुसार काम न पाना), भागते भूत की लंगोटी ही सही (जहां से कुछ न मिलने की आशा हो वहां से थोड़ा बहुत मिल जाना भी अच्छा है), चोर की दाढ़ी में तिनका (अपराधी की निरंतर शंकालुता), छछुंदर के सिर में चमेली का तेल (अयोग्य को बड़ी वस्तु मिल जाना), जहां गुल है वहां कांटा भी हैं (गुणों के साथ अवगुण भी पाये जाते हैं), तिनके की ओट पहाड़ (आँख के आगे तिनका रखने पहाड़ भी छिप जाता है अर्थात् किसी छोटी बात में भी बड़ी बात छिपी रहती है), मान का पान अपमान का लड्डू (सम्मान पूर्वक दी गई तुच्छ वस्तु भी अपमान पूर्वक दी गई मूल्यवान वस्तु से अच्छी होती है), आदि।

इसके अतिरिक्त अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं - अशर्फियों की लूट में कोयलों पर मुहर (बड़ी रकम खर्चने में आगा-पीछा न करना किंतु छोटे खर्च में आनाकानी करना), आँधी के आम (सस्ती चीज), ऊंची दुकान फीका पकवान (तत्वहीन आडंबर), ककड़ी के चोर को फांसी नहीं दी जाती (साधारण अपराध की सजा कठिन नहीं हो सकती), कभी घी घना, कभी मुट्ठी भर चना, कभी वह भी मना (जो मिल जाय उसी में संतुष्ट रहना चाहिए), कहां राजा भोज कहां गंगू तेली (दो अतुलनीय को समान दर्जा नहीं दिया जा सकता), घर की खेती (आसानी से मिलने वाली चीज), सहज पके सो मीठा होय (आराम से किया गया काम अच्छा और संतोषप्रद होता है), देगची का एक ही चावल टटोला जाता है (एक बात से मन का सारा हाल मालूम हो जाता है), सूखे धानों पानी पड़ा (समय पर सहायता न मिली), होनहार बिरवान के होत चिकने पात (प्रतिभा के लक्षण बचपन में ही प्रकट हो जाते हैं), आदि।

इस प्रकार अनेक उदाहरण है, जिनसे स्पष्ट होता है कि पादपों का हिंदी भाषा को प्रभावशाली एवं आकर्षक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

❑

15

कॉल सेंटर कर्मियों की स्वास्थ्य समस्याएं

डॉ. जे. एल. अग्रवाल

बी. पी. ओ. (बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग) या कॉल सेन्टर में कार्य करना शान समझा जाता है। युवाओं के लिए जीवन में सुख सफलता का नया मंत्र है। बी. पी. ओ., के पी. ओ., एल. पी. ओ. इत्यादि का देश के तेजी से विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। इनके कारण विकसित देशों अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया इत्यादि में देश की नई पहचान बनी है, मान-सम्मान बढ़ा है। कॉल सेंटर में कार्य करने वाले ज्यादातर युवा होते हैं। चमक-दमक अच्छा वेतन। आधुनिक पश्चिमी जीवन-शैली के कारण बी.पी.ओ. की तरफ आकर्षिक होते हैं। पर कॉल सेंटर की विशिष्ट कार्य शैली, जीवन शैली, के कारण विभिन्न शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक, भावनात्मक, पारिवारिक समस्याएं हो सकती हैं, अत: सजग करना चाहिए।

कॉल सेंटर के कार्य नीरस होते है एक ही कार्य को उसी निश्चित ढंग से बार-बार करना, लगातार कार्य करना, तनावपूर्ण हो जाता है। इनमें निश्चित समय में नियत कार्य करने की प्रतिबद्धता होती है जिसके कारण नीरसता हो जाती है, चिकित्सकीय भाषा में इसको पूर्ण निरुत्साह (बर्न आउट) कहा जाता है जिसके परिणाम स्वरूप अत्यधिक थकान, तनाव, चिंता, अवसाद इत्यादि समस्याएं हो सकती है।

कॉल सेंटर में कार्य विदेशों के ग्राहक की सुविधानुसार होता है जिसके कारण कार्य शिफ्टों (पारियों) में होता है। रात की शिफ्ट (पाली) में कार्य करने पर नींद संबंधित समस्याएं हो सकती हैं।

शरीर में भी जैविक घड़ी होती है, जो कि शरीर की विभिन्न प्रक्रियाओं जैसे सोना, जागना, भूख लगना, हार्मोन स्राव इत्यादि का नियंत्रण करती है। पारी में कार्य करने से जैविक घड़ी की कार्यप्रणाली गड़बड़ा सकती है, जिसके कारण भी विभिन्न समस्याएं हो सकती हैं।

काल सेंटर में कार्य अवधि लंबी होती है, अधिकांश को लंबी यात्रा भी करनी पड़ती है, ज्यादातर कॉल सेंटर कर्मियों को प्रतिदिन 2 से 4 घंटे वाहन में व्यतीत करने पड़ते हैं कार्य स्थल पर जाने का समय भी अनियमित होता है, देश की सडकों पर लंबी यात्रा करने से समस्याएं होना लाजिमी है।

अनियमित निष्क्रिय कार्य, अस्वास्थ्यवर्धक भोजन, जीवन शैली, लंबी अवधि का नीरस कार्य, पारी कार्य का दबाव इत्यादि कारणों से इनके व्यवहार में बदलाव आ सकता है इनका सामाजिक पारिवारिक जीवन भी प्रभावित हो सकता है।

कॉल सेंटर में कार्य करने वाले शुरू में खुश रहते हैं। पर शीघ्र ही कुंठित हो जाते हैं, कार्य में एकरसता हो जाती है। कॉल सेंटर में उन्नति के बहुत कम मौके है, असुरक्षा की भावना होती है जिसके कारण मानसिक, भावनात्मक समस्याएं हो सकती हैं या उग्र हो जाती हैं।

कॉल सेंटर का परिवेश, तनाव, निर्णन लेने में स्वतंत्रता की कमी इत्यादि कारणों से मानसिक तनाव होता है जिसके कारण भी अवसाद एवं अन्य मानसिक, भावनात्मक, व्यावहारिक, समस्याएं हो सकती हैं।

कॉल सेंटर कर्मियों में सामान्य स्वास्थ्य-समस्या

कॉल सेंटर में पारीवार विषम समय पर कार्य पर जाना पड़ता है, रात भर ड्यूटी होती है क्योंकि इस समय अमेरिका, इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया इत्यादि देशों में दिन और कार्य का समय होता है। रात की पारी में करने वालों को अक्सर दिन में बाहरी नींद और पर्याप्त समय सोने में दिक्कत होती है। जिसके कारण व्यावहारिक एवं अन्य स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं हो सकती है। पारी में कार्य करने के कारण शरीर की जैविक प्रक्रियाओं में भी बदलाव आते हैं जिसके कारण व्यवहार में बदलाव, सक्रियता या शक्ति क्षमता में कमी हो सकती है। शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी कम हो जाती है जिसके कारण संक्रामक रोग एवं अन्य रोग आसानी से हो सकते हैं।

कॉल सेंटर में कार्यरत अक्सर अनिश्चित विषम समय पर कैफेटरिया में फास्ट फूड पीजा, बर्गर इत्यादि जिनको जंक फूड या कूड़ा भोजन माना जाता है का सेवन करते है। जंक फूड में नुकसानप्रद तत्वों- कैलोरी वसा, नमक, सरल शर्करा की अधिकता और जरुरी पोषक तत्वों- विटामिन, खनिज लवण, रेशे इत्यादि की कमी होती है। कूडा भोजन और फास्ट फूड सेवन के कारण ये लोग मोटे हो सकते हैं, जिसके कारण हृद्रोगों, उच्चरक्त दाब, मधुमेह इत्यादि रोगों का खतरा बढ़ जाता है।

युवतियों में आर्तवचक्र में बदलाव के कारण रजोधर्म/मासिकधर्म में अनियमिताएं हो सकती हैं। गर्भधारण में दिक्कत हो सकती है। कंप्यूटर उपकरणों से उत्सर्जित विद्युत चुंबकीय विकिरणों के कारण जीन में बदलाव के कारण शिशुओं में ज्ञात असामानताओं की संभावना बढ जाती है। गत महीनों में दिल्ली में कॉल सेंटर पर कार्यरत युवतियों के साथ बलात्कार, हत्या की कई बारदातें हुई हैं।

यदि कॉल सेंटर पर टेलीफोन पर लगातार बात करनी पड़ती है, तो गला बैठ सकता है। श्रवण की शक्ति भी प्रभावित हो सकती है।

कंप्यूटर उपकरणों से उत्सर्जित रेडियो तंरगों के कारण तथा कंप्यूटर पर गलत मुद्रा, गलत ढंग के कार्य करने के कारण भी स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव होते है।

तनाव, अस्वास्थ्यवर्धक भोजन के कारण पेट की समस्याएं जैसे अतिअम्लता, अपच, गैस बनना, पेट फूलना, कब्ज आदि की शिकायत भी सामान्य है।

कॉल सेंटर में कार्य करने वालों को अक्सर विदेशी ग्राहकों से गालियां, अश्लील बातें सुनने के कारण भी तनाव हो सकता है।

कंप्यूटर मोबाइल के कारण समस्याएं

कॉल सेंटर में ज्यादातर समय कंप्यूटर और मोबाइल फोन के साथ व्यतीत करना पड़ता है। अत: ज्यादा समय कंप्यूटर का इस्तेमाल करने से होने वाली समस्याएं जैसे कार्पल टनल सिन्ड्रोम (कलाई दर्द, हाथों, अंगुलियों में झनझनाहट, सुन्नपन, कमजोरी इत्यादि गर्दन, पीठ, कमर, पैर, कंधों, सर दर्द आदि तथा कंप्यूटर पर गलत मुद्रा में कार्य करने, सही फर्नीचर न होने, कार्य के मध्य आराम न मिलने, व्यायाम न करने और तनाव के कारण है अनेक गड़बड़ियाँ हो सकती है। कॉल सेंटर में कार्य करने वालों में स्पॉन्डिलाइटिस की भी संभावना ज्यादा होती है।

कंप्यूटर पर कार्य करने से आँखों में सूखापन, जलन, लालिमा, दूर देखने पर धुंधला दिखाई देना, एक वस्तु दो दिखाई देना, रंग पहचानने में दिक्कत तथा सरदर्द हो सकते है।

कंप्यूटर उपकरणों (की-बोर्ड, सी. पी. यू., प्रिंटर, स्कैनर, ब्ल्यू टुथ, वाई-फाई इत्यादि) तथा मोबाइल फोन से विद्युत चुम्बकीय तरंगे निकलती हैं जिनके स्वास्थ

पर दुष्प्रभाव होते हैं। अब सिद्ध हो गया कि मोबाइल फोन से उत्सर्जित तरंगों से स्वास्थ्य कुप्रभावित होता है। कॉल सेंटर पर कार्य करने वाले अधिकांश युवा हैं। तरंगों एवं अन्य स्थिति के दुष्प्रभाव होने में 5 से 15 वर्ष का समय लग सकता है। अत: तरंगों के कारण होने वाले दुष्प्रभाव भविष्य में गंभीर और व्यापक रूप में स्पष्ट होंगे।

निजी समस्याएँ :

कॉल सेंटर में कार्यरत अधिकांश युवा हैं जो सीधे कॉलेज, स्कूल से निकल कर नौकरी करने लगे हैं। ये नहीं समझ पाते कि इस नई स्वतंत्रता और पैसे का सही उपयोग कैसे करें। अनेक शराब, सिगरेट, गुटखे का सेवन करने लगते है। कॉल सेंटर में पश्चिमी, स्वच्छंद माहौल होता है। ये युवा भारतीय संस्कृति को भूल कर पश्चिमी कार्य-शैली, जीवन शैली, आदतें अपना लेते हैं। अक्सर कंपनियां इनकों पार्टी देती हैं जिसमें मुक्त जीवन, शराब, ड्रग्स, का दौर चलता है और इनको लत लगने की संभावना रहती है। दूसरों से शारीरिक संबंध बन सकते हैं जिसके परिणाम भुगतने पड़ते है। धोखा हो सकता है। कार्य-शैली के कारण परिवारिक, सामाजिक दायित्व नहीं निभा पाते।

यदि कॉल सेंटर में कार्यरत व्यक्ति ऑफिस समयाभाव और पारिवारिक, सामाजिक जीवन को अलग नहीं रखते तो व्यावहारिक, भावनात्मक समस्याएं हो सकती हैं। तनाव, असमय, लंबी कार्य-अवधि, कार्य की एकरसता, विकास, उन्नति की आशा न होने के कारण बेचैनी, उलझन रहती है, आसानी से गुस्सा आ सकता है जिसके कारण पारिवारिक कलह हो सकती है, दोस्तों, संबंधियों से संबंध बिगड़ सकते हैं।

कॉल सेंटर कर्मियों को सुझाव :

- ऑफिस में कार्य करने के लिए फर्नीचर सही प्रकार का होना चाहिए। ऑफिस की रोशनी, तापमान, आर्द्रता, हवा का आवागमन इत्यादि आराम प्रद होने चाहिए।
- कार्य करते समय कमर, पीठ, गर्दन सीधी रखें पीठ को कुर्सी का सहारा दें। बाँहों को शरीर से सटाकर रखें। कोहनी, जांघ, घुटने का 90° अंश पर मोड़ कर रखें। कलाई सीधी रखें। मॉनीटर आंखों से करीब 45 सें. मी. दूर रखें। आंखे मॉनीटर में ऊपरी एक तिहाई हिस्से की सीध में होनी चाहिए। मॉनीटर का रंग, चमक परावर्तन और अक्षर आराम दायक होने चाहिए।
- कंप्यूटर पर कार्य करते समय 20-20-20 नियम का पालन करें। हर 20 मिनट पर 20 सेकंड आराम करें। 20 इंच दूर से देखें, पलके झपकाएं और शरीर को खिंचाव दें।
- रोजाना 30 से 45 मिनट सक्रिय व्यायाम करें। योगाभ्यास, ध्यान, शरीर और मन को शांत संतुलित बनाए रखने का उत्तम उपाय है, इनका भी अभ्यास करें।
- संतुलित स्वास्थ्यवर्धक भोजन करें। कैफेटेरिया से बेहतर और स्वास्थ्यवर्धक घर का भोजन होता है। फास्ट फूड का सेवन कम से कम करें। कैफेटेरिया में भी स्वास्थ्यवर्धक भोजन की व्यवस्था होनी चाहिए।
- जीवन में मनोरंजन के लिए भी समय निकाले। दोस्तों, परिवार के साथ समय अवश्य व्यतीत करें। परिवारिक, सामाजिक दायित्वों को अवश्य निभाएं।
- कॉल सेंटर कर्मियों की पारी जल्दी जल्दी नहीं बदलनी चाहिए, जिससे जैविक घड़ी, चक्रीय प्रक्रियाएं नए समय चक्र के साथ अभ्यस्त हो जाए।
- बी. पी. ओ. के व्यक्तियों का कर्तव्य है कि अपने यहाँ कार्यरत कर्मियों में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता उत्पन्न करें। उनके लिए आवश्यकता होने पर मानसिक, शारीरिक, स्वास्थ्य समस्याएं होने पर चिकित्सक से परामर्श उपचार की व्यवस्था होनी चाहिए।
- इनकों आंखों की देखभाल करनी चाहिए। यदि आंखे सूखती हैं तो कृत्रिम आंसू की बूंदे आंखों में डालें। यदि चश्मा या कॉन्टेक्ट लेन्स लगाते हैं तो समय-समय पर नम्बर की जांच करवाएं। चश्में के ग्लास पर ऐंटीग्लेमर कोटिंग करवाए।
- नियमित अंतराल पर स्वास्थ्य परीक्षण करवाएं जिससे रोगों का पूर्व या शुरुआती अवस्था में निदान हो, आवश्यकता होने पर उपचार करवाएं।

कॉल सेंटर में कार्य सभी को सुहावना लगता है, युवा समझते हैं स्वप्न पूरा हो गया है। पर यह चमक, खुशी अक्सर अल्पकालिक होती है। कार्य-शैली, जीवन शैली की विशिष्टताओं के कारण विभिन्न, शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, पारिवारिक, सामाजिक समस्याएं होने की प्रबल संभावना रहती है। साथ ही ज्यादातर कॉल सेंटरों में उन्नति के सीमित अवसर होते हैं जिसके कारण कुछ समय पश्चात् ही इनको कार्य बोझिल महसूस होने लगता है। कॉल सेंटर में कार्य करने वालों को समस्याओं के प्रति जागरुक होना, बचाव के लिए सावधानियां रखना आवश्यक है जिससे ये स्वस्थ, सक्रिय, प्रसन्न, और संतुष्ट रहें।

❑

16

भारत में पाए जाने वाले प्रमुख वन्य जीव

डॉ. सी. पी. सिंह

भारत एक विशाल देश है। यहां की स्थलाकृतिक व जलवायु दशाओं में व्यापक भिन्नता पाई जाती है। इस कारण देश के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार के जीव जंतु पाए जाते हैं।

भारत में लगभग 65,000 किस्म के जीव-जंतु पाए जाते हैं। इनमें लगभग 450 किस्म के सरीसृप, 150 किस्म के उभयचर, 2000 किस्म के पक्षी और 450 किस्म के स्तनपायी सम्मिलित हैं।

भारत में पाए जाने वाले प्रमुख वन्य जीवों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:-

बाघ (टाइगर) :- बाघ मध्य तथा उत्तरी एशिया का मूल निवासी है। भारत में विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रंगों के बाघ मिलते हैं। श्वेत बाघ का मूल स्थान रीवा (मध्य प्रदेश) है। हिमालय के पहाड़ी क्षेत्रों में बाघ 1800-2100 मीटर की ऊंचाई पर और कभी-कभी तो इससे ऊंचे स्थानों (3600 मीटर) की ऊंचाई तक पाए जाते हैं। बाघों की संख्या में लगातार कमी होने पर सरकार द्वारा एक अप्रैल 1973 को बाघ परियोजना लागू की गई। यह योजना सर्वप्रथम जिम कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान (उत्तराखंड) में लागू की गई थी। योजना का मुख्य उद्देश्य जैविक वातावरण संरक्षित करने के साथ-साथ बाघों की संख्या में वृद्धि करना था। वर्तमान में देश में लगभग 21 बाघ परियोजनाएं कार्यरत हैं।

सिंह :- सिंह का मूल स्थान यूरोप है। सिंह भारत के उत्तरी, पूर्वी एवं मध्य भाग में पाया जाता है। यह सौराष्ट्र (गुजरात) के गिर वन में बहुतायत से मिलता है। सिंह की दो प्रमुख प्रजातियां होती हैं :-

1. एशियाई या भारतीय सिंह *पैन्थेरा लियोपर्सिका*
2. अफ्रीकी सिंह पैन्थेरो लियो

भारतीय सिंह हृष्ट-पुष्ट होता है। इसके सारे शरीर पर रूक्ष बाल होते हैं तथा पूरे पेट पर धारियां पाई जाती हैं। यह अपना शिकार रात्रि के समय करता है।

हाथी (*एलीफैस मैक्सीमस*): हाथी 5000 किग्रा. से अधिक वजन का विशालकाय जीव है। इसका जीवन लगभग 70-80 वर्ष अनुमानित है। यह उच्च हिमालय क्षेत्रों व तटीय लवणीय मैग्रोव क्षेत्रों को छोड़कर सभी स्थानों पर मिलता है। भारत के दक्षिण में कर्नाटक, आंध्र प्रदेश एवं केरल के जंगलों में हाथियों के झुंड बहुत मिलते हैं। यह गन्ना चारा पर अपना जीवन निर्वाह करता है।

चीता मार्जार (लेपर्ड कैट) *फ्रीलिस बेंगालेन्सिस* : यह हिमालय, असम, नेपाल और पश्चिम बंगाल के क्षेत्रों तथा पश्चिमी घाटों में पाया जाता है। यह छोटे पक्षियों, कुक्कटों को अपना शिकार बनाता है।

जंगली बिल्ली या वन मार्जार (*फीलिस चाउस*):- इसका रंग भूरा व गहरा भूरा होता है। यह भारत के उप प्रायद्वीपीय भाग में हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक प्राय: वन क्षेत्रों में पाई जाती है।

हिम तेंदुआ (स्नो लेपर्ड-*पैन्थेरा यूनिका*):- यह हिमालय प्रदेश में कश्मीर से अरूणाचल प्रदेश तक ऊंचे स्थानों पर पाया जाता है। यह मैदानी तेंदुआ से कद से छोटा होता है। यह भेंड़ों, जंगली बकरियों का शिकार करता है।

भारतीय मृग सांबर (*सर्वस यूनिकोलोर*) : भारत में लगभग सभी भागों में मृग (हिरन) पाए जाते हैं। यह 127 सेमी. ऊंचा होता है तथा इसका औसत वजन लगभग 300 किलोग्राम होता है। यह राजस्थान की सरिस्का, रणथम्भौर राष्ट्रीय उद्यानों में बहुतायत से मिलता है।

कस्तूरी मृग (*मोस्कस क्रायोगाएर*) : कस्तूरी मृग प्रकृति के सुंदरतम जीवों में से एक है। इसे ''हिमालयन मस्क डियर'' के नाम से भी जाना जाता है। अपनी ''कस्तूरी'' के लिए प्रसिद्ध यह मृग वनाच्छादित हिमशिखरों में पाए जाते हैं। इस मृग की नाभि में स्थित कस्तूरी की सुगंध ही इस मृग को विशिष्टता प्रदान करती है। कस्तूरी मृग का रंग भूरा और उस पर काले-पीले धब्बे पाऐ जाते हैं। नर की पूंछ छोटी और बिना बालों वाली होती है। इसके सींग नहीं होते। जबड़े में दो लंबे दांत पीछे की ओर झुके होते हैं जिनका उपयोग यह आत्मरक्षा एवं जड़ी-बूटियों को खोदने में करता है। एक मृग में सामान्यतया 30 से 45 ग्राम तक कस्तूरी पाई जाती है। यह नर मृग के उदर के निचले भाग में जननांग के समीप एक ग्रंथि से स्रावित होती है। यह स्रावित पदार्थ उदरीय चमड़ी के नीचे स्थित एक थैलीनुमा स्थान पर एकत्रित होता रहता है। इस थैली से ही कस्तूरी प्राप्त की जाती है।

औषधि उद्योग में कस्तूरी का इस्तेमाल निमोनिया, टाइफाइड, दमा, मिरगी, ब्राकायूरिस और हृदय रोग के लिए बनाई जाने वाली दवाओं में किया जाता है।

कृष्ण मृग (ब्लैक बक -*ऐन्टीलोप सर्विक्रैप्रा*) :- यह चाकलेटी काले रंग का हिरन होता है। यह मजबूत टांगे लोमचर्म वाला हिरन है। यह तीव्र गति से दौड़ता है। नेपाल, भारत सीमा के तराई वाले वनों में बहुतायत रूप में पाया जाता है।

भौंकता हिरन या बंर्किंग डियर (*मुन्टिएकस मुन्ट्याक*): यह हिरन हिमालय के घने जंगलों में पाया जाता है। सतपुड़ा की पहाड़ियों, अरुणाचल प्रदेश और नागालैंड तक मिलता है। भारत के अनेक अभ्यारण्यों, बांदीपुर (कर्नाटक), मेलघाट (महाराष्ट्र), बांधवगढ़ (म.प्र.), राजाजी (उत्तराखंड), मानस (असम), सिम्लीपाल (उड़ीसा) आदि में भौंकता हिरन पाया जाता है।

चौसिंगा हिरन (*टेट्रासेरस क्वाड्रिकॉर्निस*) :- इस हिरन के सिर पर चार सींग होने की वजह से इसे चौसिंगा हिरन कहते हैं। इसका औसत कद 2 फुट और वजन 18 किग्रा. होता है। यह तराई क्षेत्र में अत्यधिक संख्या में पाया जाता है।

चीतल या चित्तीदार हिरन (*ऐक्सिस ऐक्सिस*) :- भारत उपमहाद्वीप के बड़े स्तनपायियों में चीतल बहुतायत से मिलता है। यह अंडमान द्वीप समूह, मानस, गिरवन, कार्बेट, कान्हा, बांदीपुर, पलामू सरिस्का, रणथंभौर आदि राष्ट्रीय पार्कों में मिलता है।

एशियाई जंगली भैंसा (*ब्यूबैलस ब्युबोलिस*) : जंगली भैंसा घरेलू भैंसे से अधिक मजबूत व शक्तिशाली होता है। इसका औसत वजन 900 किग्रा. होता है। यह नदी तटीय वनों, गंगा, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा, गोदावरी के समीप विस्तृत घास के मैदानों में बहुतायत से पाया जाता है। उदयंती (रायपुर) तथा उड़ीसा के कोटादूत में भी जंगली भैंसा मिलता है।

❑

17

जंगल की आग - पलाश

डॉ. नवीन कुमार बौहरा

सिंदूरी पुष्प-गुच्छों से ऋतुराज बसंत का अभिवादन करता पलाश प्रकृति का एक अनुपम उपहार है जो वर्षों से मानव समाज की लगातार सेवा कर रहा है। कवि ई सुरी ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा है-

अब दिन आए बसंत नीरे, ललित ओर रंग भोरे
टेसू और कदंब फूले हैं कालिंदी के तीरे . . . .

पलाश को हिंदी में ढाक या पलास, बंगाली में पलाश, मराठी में पलस, गुजराती में खाखरो, तेलुगु में मोदुगा, तमिल में परस, कन्नड में मुलुगा, मलयालम में पलास एवं वैज्ञानिक भाषा में *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा* कहते है। मार्च के महीने में पूरा वृक्ष सिंदूरी-लाल रंग के फूलों से लद जाता है तथा मीलों दूसरे से यह अपनी उपस्थिति की सूचना देता है, इसी कारण इसे फ्लेम ऑफ फॉरेस्ट अर्थात् ''जंगल की आग'' भी कहते हैं।

यह मध्यम आकार का पर्णपाती वृक्ष पेपिलिओनेसी कुल का है। यह एक अति प्राचीन वृक्ष है जिसका उल्लेख वेदों में अनेक स्थानों पर मिलता है। आयुर्वेद के जनक चरक एवं सुश्रुत ने पलाश के समूचे वृक्ष का महत्व बताया है। इसे संस्कृत साहित्य में किशुक, रक्त पुष्पक, क्षर श्रेष्ठ, ब्रह्म पादप आदि नामों से सम्मानित किया गया है। यह भारत के लगभग सभी भागों में पाया जाता है। भारत में लाख के कीड़े के परपोषी वृक्ष के रूप में पलाश का स्थान कुसुम के बाद है। पलाश पर उत्पन्न लाख अच्छी किस्म की नहीं होती परंतु उसकी मात्रा अन्य किसी परपोषी जाति पर उत्पन्न बेर तथा अन्य लाख से अधिक होती है। पलाश के वृक्ष से प्राप्त लाख के कीड़े के भ्रूण से लाख पोषियों को निवेशित भी किया जाता है परंतु कुसुम पर निवेशित नहीं किया जाता है। इसे जड़ चूषकों (रूट सकर्स) द्वारा पुनर्जीवित किया जा सकता है। इसके विभिन्न भाग भिन्न-भिन्न रूपों में उपयोगी है :-

1. **पत्तियाँ** :- पलाश की पत्तियां फरवरी माह में झड़ जाती है तथा नई पत्तियां फूल खिलने के बाद मार्च-अप्रैल में निकलती है। इसकी पत्ती में 20-30 से.मी. वृत्ताकार माप के तीन पत्रक पाए जाते है। पत्तियां शीतल, रूक्ष, ग्राही, एवं कफरात शामक होने से प्राचीन काल से ही देश भर में दोने-पत्तल बनाने के काम आती है। ऐसा माना जाता है कि इनमें भोजन करने से भूख बढ़ती है एवं पाचन क्रिया ठीक रहती है। नेत्र एवं मस्तिष्क को भी इससे शक्ति मिलती है। इनका उपयोग करने के बाद इन्हें आसानी से नष्ट कर सकते है।

   पलाश के पूर्ण विकसित एकवृक्ष से 2500 से 4000 तक पत्तियां प्राप्त होती है जो 350 से 400 पत्तलें बनाने के लिए पर्याप्त है। इससे ग्रामीण एक वर्ष में दो हजार से तीन हजार रूपए कमा सकता हैं। इसके अतिरिक्त पत्तियों का उपयोग फोड़ों, मुहांसे, गिल्टी, बावासीर आदि के उपचार में किया जाता है। इसकी पत्तियों में उपस्थित ग्लूकोसाइड के कारण यह पौष्टिक चारे के रूप में भी प्रयुक्त होती है। तमिलनाडु व पश्चिम बंगाल में सूखी पत्तियाँ बीड़ी बनाने के काम आती है।

2. **बीज** :- पलाश की फली मई माह में पककर तैयार हो जाती है। फली की नोक पर पाया जाने वाला बीज, लाल-कत्थई रंग का एवं अंडाकार या गुर्दाकार होता है। इसके बीजों में 8-10 प्रतिशत काइनो ऑइल (तेल), 18 प्रतिशत एल्युमिनाइड व कुछ प्रतिशत शर्करा पाई जाती है। बीज एवं तेल के कृमिनाशक गुणों के कारण इनका उपयोग ज्वर, मलेरिया, फीताकृमि एवं गोलकृमि के उपचार में किया जाता है। तेल एवं इसकी खली में पाया जाने वाला लिपिड-रहित पदार्थ कीटनाशक होता है जिसे तेल एवं खली से अलग कर कीटनाशी के रूप में उपयोगी बनाने के लिए अनुसंधान जारी है। पलाश के बीजों का तेल, साबुन उद्‌योग में भी किया जाता है जबकि इसकी खली प्रोटीन से भरपूर होती है।

3. **फूल** :- इसके फूल बाहर से मखमली भूरे-पीले एवं भीतर की ओर सिंदूरी लाल रंग के होते है तथा मार्च में संपूर्ण वनों में अपनी उपस्थिति दिखाते है इसके कारण ही इन्हें जंगल की आग (फ्लेम ऑफ फारेस्ट) कहते है। इसके फलों में सुंगध न होने के कारण लुभावने रंग, पौष्टिक परागण तथा रस के कारण अनेक कीटों को आकर्षित करते है। अर्क के रूप में पलाश के सूखे फूलों से पीला रंग प्राप्त होता है। जिसमें फिटकरी, व चूना मिलाकर गहरा सिंदूरी या नारंगी रंग प्राप्त करते हैं जो सिल्क, अन्य कपड़ों (फेब्रिक), काष्ठ एवं खाद्‌य पदार्थों को रंगने के काम आता है। इस रंग से रंगे हुए वस्त्र पीलिया के रोगी को पहनाने से इस रोग की वृद्‌धि पर रोक लगती है। चर्मरोग एवं चेचक के प्रकोप से भी बचाव होता है। इसके फूल भी सूजन, प्रदाह या जलन को कम करते हैं। होली पर आज भी पलाश के फूलों से केसरिया रंग बनाया जाता है।

4. **जड़** :- पलाश की नई जड़ों से रेशा निकलता है जो मध्यप्रदेश के कुछ भागों में रस्सियां आदि बनाने के काम आता है। इसकी जड़ की छाल रक्तदाब के उपचार में उपयोगी है।

5. **लकड़ी** :- वृक्ष की लकड़ी प्रमुखत: ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन के रूप में प्रयुक्त होती है। इसकी छाल से प्राप्त अर्क का प्रयोग नजला एवं खांसी के उपचार में किया जाता है। इसकी शाखाओं का धार्मिक महत्व भी है।

6. **गोंद** :- इसकी छाल की दरारों एवं कृत्रिम चीरों से लाल रस निकलता है जो सूखकर लाल गोद बन जाता है। इसे ''ढाक की गोद'' या ''बंगाल कीनो'' कहते हैं। इसमें कार्नेटिक अम्ल व गैलिक अम्ल 50 प्रतिशत, पिच्छल द्रव्य व 2 प्रतिशत क्षारक पाए जाते है। इस गोद को पुनिया गोद या कमरकस कहते है। यह त्वचा की बीमारियों, मुख-रोगों, अतिसार, पेचिश, उदर-संबंधी तथा अन्य रोगों में उपयोगी है।

7. **लाख** :- लाख एक रेजिन स्राव है जो **लेसीफर लेक्का** नामक कीट द्‌वारा स्रावित किया जाता है। यह कीट पलाश के वृक्ष पर परजीवी के रूप में रहता है। लाख वर्ष में दो बार प्राप्त किया जाता है। अप्रैल-मई में लाख का उत्पादन कम होता है परंतु सुनहले रंग के कारण उसकी कीमत अधिक होती है जबकि अगस्त सितंबर में प्राप्त होने वाला लाख गहरे रंग का होने के कारण अपेक्षाकृत कम दाम में बिकता है। लाख का उपयोग खोखले गहनों के अंदर भरने, लाख के गहने, खिलौने व ग्रामोफोन रिकार्ड बनाने में किया जाता है।

इस प्रकार पलाश दोना-पत्तल व्यवसाय एवं लाख उत्पादन के कारण किसानों के लिए कृषि वानिकी के अंतर्गत बहु-उपयोगी वृक्ष है तथा इससे खेती की पैदावार पर भी कोई हानिकारक प्रभाव नहीं होने की पुष्टि भी हो चुकी है। यह पाला सह तथा सूखा सह होता है तथा लवणीय मृदाओं के सुधार हेतु भी उपयोगी है।

❑

18

विज्ञान-समाचार

डॉ. दीपक कोहली

● कैप्लर ने खोजा पृथ्वी की तरह का ग्रह :

नासा के अंतरिक्षयान कैप्लर ने अपने सौरमंडल के बाहर पृथ्वी की तरह के ग्रह को खोजने में सफलता प्राप्त की है। खगोलविदों का ऐसा भी अनुमान है कि इस ग्रह की सतह पर जल, द्रव रूप में मौजूद हो सकता है। खोजे गए ग्रह का नामकरण कैप्लर-22बी किया गया है। इसकी त्रिज्या पृथ्वी की त्रिज्या से लगभग 2.4 गुना अधिक है। यह किसी सूर्य जैसे तारे के निवास्य क्षेत्र के बीच उसकी परिक्रमा करने वाले अभी तक मिले ग्रहों में सबसे छोटा है।

अभी तक वैज्ञानिक इसी बात का अनुमान लगा रहे हैं कि इस ग्रह की संरचना मुख्य रूप से चट्टानी है या गैसीय अथवा द्रवीय। इसके लिए अभी काफी ज्यादा शोध की जरूरत है, उसके बाद ही शायद इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा जा सकेगा। कैप्लर अंतरिक्षयान लगातार सुदूर अंतरिक्ष में नए ग्रहों की खोज करता रहता है। इसके लिए वह नियमित रूप से 1,50,000 से अधिक तारों की दीप्ति के ह्रास को मापता रहता है ताकि तारों के निकट किसी ग्रह की खोज की जा सके। इसके लिए भू-आधारित दूरबीनों और स्पिट्जर अंतरिक्ष दूरबीन का उपयोग किया जाता है।

● नासा का चंद्रमा अभियान :

चंद्रमा का अधिक गहराई से अध्ययन करने के लिए अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा ने दो अंतरिक्षयान भेजे हैं जो सफलतापूर्वक इसकी कक्षा में प्रवेश कर चुके हैं। इन अंतरिक्षयानों का नामकरण क्रमशः ग्रेल-ए व ग्रेल-बी किया गया है। ग्रेल अंतरिक्षयानों का मुख्य उद्देश्य चांद की सतहों की गहराई के बारे में जानकारी एकत्रित करके एक चित्र बनाना है। वैज्ञानिकों का कहना है कि चंद्रमा की सतहों की गहराई में बदलाव का कारण इसकी संरचना और पथरीले चट्टानों का अनियमित गठन हो सकता है। इस संरचना के गुरुत्वीय प्रभाव चंद्रमा के ऊपर उड़ रहे अंतरिक्षयान पर भी पेड़ेगा। ग्रेल उपग्रह चंद्रमा की परिक्रमा करते हुए जानकारियां एकत्रित करेंगे। वैज्ञानिकों का कहना है कि चंद्रमा की बाहरी सतह का काफी ज्यादा अध्ययन किया जा चुका है, अब आंतरिक सतह का अध्ययन करके इसके बारे में महत्वपूर्ण जानकारियां जुटाई जाएंगी।

● लीप सेकेंड खत्म करने पर सहमति नहीं :

कुछ समय पूर्व ही लीप सेकेंड को खत्म करने के लिए घड़ियों में एक अतिरिक्त सेकेंड जोड़ने की बात कही जा रही थी, लेकिन वैज्ञानिकों के बीच सहमति न बन पाने की वजह से यह फैसला फिलहाल टाल दिया गया है। इस बारे में फैसला अंतरराष्ट्रीय दूरसंचार संघ (इंटरनेशनल टेलीकम्युनिकेशन यूनियन) अर्थात आईटीयू के विशेषज्ञों को लेना है।

अब आई टी यू की बैठक 2015 में होनी है जिसके बाद ही इस पर फैसला किया जाएगा। आई टी यू की बैठक के दौरान अमेरिकी वैज्ञानिकों का तर्क था कि लीप सेकेंड की वजह से संचार और संचालन से संबंधित तंत्र में काफी परेशानियां उत्पन्न हो रही है। दूसरी ओर ब्रिटेन का कहना था कि लीप सेकेंड को खत्म करने के काफी दुष्परिणाम हमारे सामने आ सकते हैं। कनाडा, जापान, फ्रांस आदि देशों ने ब्रिटेन के रुख का समर्थन किया।

● सेन्सरयुक्त-सूट बताएगा बच्चे के रोने का कारण

नादान बच्चों के रोने के कारणों का पता लगाना माता-पिता के लिए एक मुश्किल काम होता है। इस समस्या को देखते हुए एक कंपनी ने बच्चों के लिए विशेष सेन्सरयुक्त सूट बनाया है, जो संदेश या ई-मेल भेजकर माता-पिता को बच्चे के रोने की सूचना देगा। साथ ही यह सूट बच्चे के रोने की वजह भी बताएगा, ताकि अभिभावक जरूरी पहल कर सकें। इसे 'एक्समोबेबी सूट' नाम दिया गया है। यह सेन्साटैक्स एंड जॉर्जिया टेक्नोलॉजी द्वारा विकसित प्रौद्योगिकी के आधार पर बनाया गया है। इस सूट के रेशों में शरीर का ताप जांचने के लिए थर्मामीटर और दिल की धड़कनों पर नजर रखने के लिए मॉनिटर समेत बच्चे की गतिविधियों की निगरानी करने के लिए विशेष सेन्सर लगे हुए हैं। निर्माताओं ने इस सूट के काम करने के तरीके के बारे में बताते हुए कहा कि इसमें सेंसर से प्राप्त आंकड़ों को एकत्रित करने और इसकी जानकारी माता-पिता को देने के लिए ट्रांसरिसीवर और ट्रांसमीटर लगे हुए हैं। यह प्रत्येक मिनट ई-मेल या संदेश भेजकर अभिभावक को बच्चे की स्थिति से अवगत कराता है। यह सूट बच्चे के नैपकिन की नमी के स्तर को मापने में भी सक्षम है।

● शैंपू से बिगड़ती तंत्रिकाएं :

केश लंबे हों या छोटे, उन्हें स्वस्थ और चमकदार बनाए रखने के लिए शैंपू का चलन आम बात है, मगर खास बात यह है कि यह आपके तंत्रिका-तंत्र को अस्त-व्यस्त कर रहा है। यूनिवर्सिटी ऑफ पीट्सबर्ग में हुए एक चिकित्सकीय अध्ययन के अनुसार शैंपू और हाथ-पांव के लिए प्रयुक्त लोशन में प्रतिसूक्ष्मजीवी (एंटी माइक्रोबियल) क्षमता पाई जाती है, जो तंत्रिका-तंत्र के लिए आवश्यक न्यूरॉनों के विकास में रुकावट पैदा करती है। इस से शरीर का तंत्रिका-तंत्र न तो भलीभांति कार्य कर पाता है और न ही विकसित हो पाता है। इस विकृति के कारण तंत्रिका-तंत्र से संबंधित रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रिपोर्ट के अनुसार चिकित्सक सहज ही कारण तक नहीं पहुंच पाते और रोग का इलाज शुरू कर देते हैं।

रिपोर्ट के अनुसार लंबे समय तक इस प्रकार के शैंपू का प्रयोग करने से शरीर में वह एंजाइम नहीं निकल पाता, जो कोशिकाओं के आपसी संपर्क में मददगार होता है। इस स्थिति के लिए शैंपू का प्रतिसूक्ष्मजीवी गुण दोषी होता है। चिकित्सकों ने सलाह दी है अव्वल तो शैंपू का इस्तेमाल ने करें और यदि शैंपू का प्रयोग करना ही पड़े तो बेहतर गुणवत्ता वाले शैंपू का प्रयोग करना चाहिए।

● लार से वायलिन की झंकार :

शिकार को फंसाने के लिए मकड़ी अपनी जिस लार से जाल तैयार करती है, जापानी वैज्ञानिकों ने उसी से वायलिन की तार (स्ट्रिंग) तैयार कर दिखाई है। रोचक बात यह है कि इस तार से न केवल कर्णप्रिय ध्वनि निकल रही है, बल्कि यह अपेक्षाकृत अधिक मजबूत भी है। जापान की नारा मेडिकल यूनिवर्सिटी से जारी हालिया रिपोर्ट में इस महत्वपूर्ण सफलता का जिक्र किया गया है। यहाँ के बहुलक (पॉलीमर) रसायन की प्रोफेसर शिजेयोंशी द्वारा तैयार यह तार विश्वस्तरीय वायलिन तार के समकक्ष पाई गई है।

प्रोफेसर शिजेयोंशी पिछले 35 वर्षों से मकड़ी से जुड़े हुए इस शोध क्षेत्र में कार्यरत हैं और उन्होंने मकड़ी की लार से सर्जरी में प्रयुक्त कई महत्वपूर्ण धागे और जाल तैयार किए हैं, जिनका पेटेंट किया जा चुका है और जो जापान के अस्पतालों में घायल और कटी त्वचा के ऑपरेशन आदि में टांके के रूप में प्रयोग किए जा रहे हैं। प्रोफेसर शिजेयोंशी एकांत के क्षणों में वायलिन

बजाती हैं और बजाते-बजाते इस हद तक खो जाती हैं कि उनकी बेहतर क्वालिटी की तार (स्ट्रिंग) भी टूट जाती है। इसी समस्या के निवारण की सोच उन्होंने मकड़ी की लार से अपने वायलिन के लिए स्ट्रिंग तैयार की थी। ज्ञातव्य है कि इसी लार से ताना-बाना बुन बुलेटप्रूफ जैकेट भी तैयार की जा चुकी है। रिपोर्ट के अनुसार सामान्य धागे से तैयार वायलिन स्ट्रिंग में धागों में बीच-बीच में रिक्त स्थान रह जाता है जो उसे मजबूती नहीं दे पाता। मगर लार से तैयार धागे को इस प्रकार बांटा गया है कि उसमें खाली स्थान रहने की गुंजाइश ही नहीं रह गई है। तैयार स्ट्रिंग मजबूत तो है ही, उससे स्पष्ट लहरी भी निकलती है।

अपने परीक्षण के लिए प्रोफेसर शिजेयोंशी ने मकड़ी की *नेफिला मस्कुलस्टा* की तीन सौ मकड़ियों को पाला और उनसे कच्चा माल तैयार किया। इस तरह वायलिन स्ट्रिंग अनोखा है। वायलिन विशेषज्ञों का मानना हे कि यह स्ट्रिंग विभिन्न ध्वनि प्रभाव छोड़ने में सक्षम है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इसका निर्माण वैज्ञानिक तरीके से किया गया है।

● अमेरिका रोबोट चीता ने तोड़ा स्पीड रिकार्ड

पेन्टागन की मुख्य शोध एजेंसी ने सबसे तेज गति से दौड़ने वाला एक रोबोट चीता तैयार किया है। यह एक घंटे में 29 किलामीटर तक दौड़ लगा सकता है।

डिफेंस एडवांस्ड रिसर्च प्रोजेक्टस एजेंसी (डीएआरपीए), अमेरिका के अनुसार बिना सर वाला यह रोबोट आकार में एक छोटे कुत्ते की तरह है और ट्रेड मिल पर दौड़ सकता है। रोबोट का क्रमादेशन (प्रोग्रामिंग) इस तरह से किया गया है कि इसकी हरकतें प्रकृति में तेज गति से दौड़ने वाले जानवरों की तरह हैं। वास्तविक चीते के समान ही यह तेज और फुर्तीले डग भरने में माहिर है। एजेंसी के मुताबित चीते ने तेज दौड़ में पैर वाले रोबोटों के लिए एक नया रिकार्ड कायम कर दिया है। रोबोट को मैसाचुएट्स के वाल्थम स्थित बोस्टन डायनेमिक्स की मदद से तैयार किया गया है। इस तरह के तेज भागने वाले रोबोट से सबसे ज्यादा फायदा अमेरिकी सैनिकों को सड़क किनारे रखे गए बम को निष्क्रिय करने और अन्य कार्यों में मिल सकता है।

● पिज्जा और बर्गर से नपुंसकता का खतरा :

पिज्जा-बर्गर जैसे फास्टफूड पिता बनने के अरमानों पर पानी फेर सकते हैं। इनके सेवन से पुरुषों के शरीर में न केवल शुक्राणुओं का उत्पादन घटता है, बल्कि शुक्र (सीमेन) के घनत्व में भी कमी आती है। अमेरिका स्थित हार्वर्ड मेडिकल स्कूल के ताजा शोध में यह बात सामने आई है।

शोधकर्ताओं ने लगातार चार साल तक 99 पुरुषों की संतानोत्पत्ति की क्षमता पर उनकी खुराक के दुष्प्रभाव आंके। इस दौरान उच्च वसा युक्त खाद्य सामग्रियों का सेवन करने वाले प्रतिभागियों के शरीर में शुक्राणुओं के उत्पादन में 43 प्रतिशत की कमी देखी गई। साथ ही शुक्र का घनत्व (शुक्राणु प्रति मिलिलिटर) भी 38 प्रतिशत कम पाया गया। प्रमुख शोधकर्ता जिल अट्टामैन के मुताबित पिज्जा-बर्गर जैसे फास्टफूड में संतृप्त वसा पाए जाते हैं। ये मोटापे और हृदयरोगों को दावत देने के साथ-साथ नपुंसकता का खतरा भी बढ़ाते हैं। अट्टामैन के अनुसार बीते 60 साल में दुनिया के विभिन्न देशों में पुरुषों में शुक्राणुओं के उत्पादन में औसतन 50 प्रतिशत तक की कमी आई है।

● अम्लीय होता जा रहा है समुद्री जल :

हाल में किए गए शोध के निष्कर्ष बताते हैं कि मानव गतिविधियों की वजह से समुद्री जल लगातार अम्लीय होता जा रहा है। शोधकर्ताओं का तो यहां तक कहना है कि यदि समुद्री जल के अम्लीय होने की यही रफ्तार रही तो जल्दी ही लगभग 30 प्रतिशत जातियां 21वीं शताब्दी के अंत तक लुप्त हो जाएंगी। उल्लेखनीय है कि जीवाश्म ईंधन के जलने से कार्बन-डाईऑक्साइड का अत्यधिक मात्रा में उत्सर्जन होता है, जिसका अधिकांश हिस्सा समुद्र द्वारा सोख लिया जाता है। यही मुख्य वजह है जिसकी वजह से समुद्री जल लगातार अम्लीय होता जा रहा है। इससे सबसे बड़ा नुकसान प्रवाल भित्तियों व समुद्र में पाई जाने वाली अन्य प्रजातियों को पहुँच रहा है। वैज्ञानिकों का कहना है कि वर्ष 2100 तक जैव विविधता पर इसका अत्यंत बुरा प्रभाव पड़ेगा। हाल के वर्षो में समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र पर काफी दुष्प्रभाव पड़ा है।

● अंतरिक्ष से कूदेगा मनुष्य

दुनिया के इतिहास में पहली बार कोई मनुष्य पृथ्वी के वायुमंडल के ऊपर अंतरिक्ष से बिना किसी मशीन की मदद से कूदने की योजना बना रहा है। ये हैं ऑस्ट्रिया के फेलिक्स बॉमगार्टनर जिन्हें गुब्बारे की सहायता से पृथ्वी से 23 मील ऊपर पहुंचाया जाएगा जहाँ से वे कूदेंगे। इस दौरान वे एक दबाव वाला सूट पहने होंगे। इसमें ऑक्सीजन की सप्लाई की भी सुविधा होगी। गौरतलब है कि इतनी ऊंचाई पर बिना अंतरिक्ष सूट पहने किसी भी मानव का खून खौल सकता है।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि बॉमगार्टनर इससे पहले मलेशिया की सबसे ऊँची इमारत पेट्रोनास टावर से भी कूद चुके हैं। लेकिन अंतरिक्ष से कूदना एक अलग ही अनुभव होगा जिसमें जरा सी चूक करने पर उनकी जान भी जा सकती है। इसी को देखते हुए अंतरिक्ष सूट का पुख्ता तरीके से परीक्षण किया गया है।

❑

लेखक-परिचय

1. **मधु ज्योत्सना**
ईशान स्टूडियो, दुकान नं. 20 विश्वनाथ मंदिर,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-221005 (उ.प्र.)

2. डॉ. दीपक कोहली
5/104, विपुल खंड, गोमती नंगर,
लखनऊ- 226010 (उ.प्र.)

3. डॉ. श्री कृष्ण महाजन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक (वनस्पति विज्ञान)
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
खरगौन- 451001 (म.प्र.)

4. डॉ. ए. के. चतुर्वेदी
26 कावेरी एन्क्लेव, फेज-II,
निकट स्वर्ण जयंती नगर; रामघाट रोड,
अलीगढ़ - 202001 (उ.प्र.)

5. डॉ. सुनील कुमार जोशी
रीडर एवं अपर चिकित्सा अधीक्षक
राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज, गुरुकुल कांगड़ी,
हरिद्वार, (उत्तराखंड)

6. नीरजा श्रीवास्तव
2-क-20 विज्ञान नगर,
कोटा (राजस्थान) 324005

7. डॉ. एस. डी. शर्मा व डॉ. जितेंद्र कुमार
पहाड़ी कृषि अनुसंधान एवं प्रवार केंद्र,
बजौरा, जिला कुल्लू, हि.प्र. 1715125

8. डॉ. परशुराम शुक्ल
आइवरी फ्लैट नं. 20
पांचवी मंजिल, प्लाटिनम प्लाज़ा, टी. टी. नगर
भोपाल (म.प्र.) पिन- 462003

9. विजन कुमार पाण्डेय
बडी बाग, लंका मैदान (मजार के पास)
गाजीपुर - 233001 (उ.प्र.)

10. डॉ. जे. एल. अग्रवाल
3, ज्ञानलोक, मयूर विहार,
ई- शास्त्री नगर, मेरठ (उ.प्र.) 250004

11. डॉ. राजू भारद्वाज
उद्योग विशेषज्ञ, कृषिविज्ञान केंद्र, सिरोही

12. डॉ. दिनेश मणि
35/3 जवाहरलाल नेहरू रोड,
जॉर्ज टाउन इलाहाबाद

13. डॉ. विजय कुमार उपाध्याय
कृष्णा एन्क्लेव, राजेंद्र नगर
जमगोडिया, बोकारो, झारखंड

14. सतीश चंद्र सक्सेना
बी-बी/35 एफ, जनकपुरी
नई दिल्ली 110066

15. डॉ. रीति थापर कपूर
एमिटी विश्वविद्यालय, नोएडा (उ.प्र.)

16. रवीना महाजन
राजेंद्र निवास, नूतन नगर,
खरगौन (म.प्र.)

17. पूर्वा महाजन
32 जैन मंदिर पथ खरगौन (म.प्र.)

18. डॉ. सी. पी. सिंह
सहायक प्रोफेसर (प्राणिविज्ञान)
राजकीय महाविद्यालय, नारायण नगर,
पिथौरागढ (उत्तराखंड)

19. नवीन कुमार बौहरा
प्लॉट 389, गली नं. 10
मिल्कपैन कॉलोनी, पाल रोड, जोधपुर

20. डॉ. मृदुल जोशी
सहायक प्रोफेसर (हिंदी विभाग)
गुरूकुल महिला महाविद्यालय
गुरूकुल कागंड़ी वि. वि. हरिद्वार

आयोग के प्रकाशनों की सूची

शब्दसंग्रह, शब्दावलियाँ

शीर्षक		मूल्य
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी)		
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान खंड 1, 2 (संशोधित संस्करण)		174.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान, खंड 1, 2		292.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)		350.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी)		48.50
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी (सिविल, विद्युत, यांत्रिक)		340.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : पशु चिकित्सा विज्ञान		82.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : प्राणि विज्ञान		311.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मुद्रण इंजीनियरी		48.00
विषयवार शब्दालियाँ (अंग्रेजी-हिंदी)		
भौतिकी	अर्धचालक शब्दावली	140.00
गृह विज्ञान	गृह विज्ञान शब्द-संग्रह	60.00
	रेशम शब्द-संग्रह	50.00
वानिकी	वानिकी शब्द-संग्रह	447.00
जीव विज्ञान	कोशिका जैविकी शब्द-संग्रह	62.00
	कोशिका तथा अणु जैविकी शब्द-संग्रह	348.00
प्रशासन	प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	20.00
	प्रशासनिक शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)	20.00
रसायन	रसायन शब्द-संग्रह	592.00
	इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली	55.00
वाणिज्य	पूंजी बाजार एवं संबद्ध शब्दावली	79.00
	वाणिज्य शब्दावली	259.00

कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी	कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी शब्द संग्रह	231.00
इंजीनियरी	इलेक्ट्रॉनिक शब्दावली	349.00
भूगोल	जलवायु विज्ञान शब्दावली	131.00
	प्राकृतिक विपदा शब्दावली	17.00
भू-विज्ञान	अनुप्रयुक्त भूविज्ञान शब्दावली	115.00
	आर्थिक भूविज्ञान शब्दावली	75.00
	सामान्य भूविज्ञान शब्दावली	101.00
	भूविज्ञान शब्द-संग्रह	88.00
	भू-भौतिकी शब्दावली	67.00
	खनिज विज्ञान शब्दावली	130.00
	खनन एवं भूविज्ञान शब्द-संग्रह	32.00
	जीवाश्म विज्ञान शब्दावली	129.00
	शैल विज्ञान शब्दावली	82.00
	संरचनात्मक भूविज्ञान शब्दावली	73.00
	संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द-संग्रह	15.00
पत्रकारिता	पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली	15.00
	प्रसारण तकनीकी शब्दावली	310.00
गणित	गणित शब्द-संग्रह	143.00
आयुर्विज्ञान	आयुर्विज्ञान के सामान्य शब्द एवं वाक्यांश (अंग्रेजी-तमिल-हिंदी)	279.00
	औषधि-प्रतिकूल प्रतिक्रिया शब्दावली	273.00
	आयुर्विज्ञान शब्द-संग्रह	517.00
	रोगनिदान एवं विकृतिविज्ञान शब्दावली	
लोक प्रशासन	संसदीय कार्य शब्दावली	130.00
गुणता नियंत्रण	गुणता नियंत्रण शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी)	38.00

विषयवार पारिभाषिक शब्दकोश (अंग्रेजी-हिंदी)

नृविज्ञान	सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश	24.00
पुरातत्व विज्ञान	पुरातत्व विज्ञान परिभाषा कोश	509.00
कला एवं संगीत	पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश	28.55
जैविकी	कोशिका जैविकी परिभाषा कोश	121.00
वनस्पति विज्ञान	वनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश (संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण)	75.00
	पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश	75.00
	पादपरोगविज्ञान परिभाषा कोश	75.00
	पुरावनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश	80.50
रसायन	रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश	25.00

1926 HRD/14—10

	उच्चतर रसायन परिभाषा कोश	17.00
	धातुकर्म परिभाषा कोश	278.00
वाणिज्य	वाणिज्य परिभाषा कोश	24.70
अर्थशास्त्र	अर्थमिति परिभाषा कोश	17.65
इंजीनियरी	सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोश	61.00
	विद्युत इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00
	यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश-1	84.00
भूगोल	मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश	231.00
भू-विज्ञान	भू-विज्ञान परिभाषा कोश	63.00
	पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश	173.00
	शैल विज्ञान परिभाषा कोश	153.00
	संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश	13.50
कृषि	कृषि कीट विज्ञान परिभाषा कोश	75.00
	सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश	125.00
	मृदा विज्ञान परिभाषा कोश	77.00
विधि	अंतरराष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश	344.00
पत्रकारिता	पत्रकारिता परिभाषा कोश	87.50
प्रबंध विज्ञान	प्रबंध विज्ञान परिभाषा कोश	170.00
गणित	गणित परिभाषा कोश	203.00
दर्शन शास्त्र	दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश	198.00
	भारतीय दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश खंड 3	136.00
भौतिकी	तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश	10.00
	भौतिकी परिभाषा कोश	700.00
प्राणि विज्ञान	प्राणि विज्ञान परिभाषा कोश	216.00
आयुर्विज्ञान	आयुर्वेद परिभाषा कोश	250.00

क्षेत्रीय भाषा शब्दावली

(क) अंग्रेजी-ओडिया

आयुर्विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	450.00
राजनीति विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	186.00
इतिहास शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	404.00
गणित शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	189.00
प्राणिविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	205.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	162.00
मनोविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	108.00

अर्थशास्त्र शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	183.00
रसायन शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	137.00
वनस्पतिविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	208.00
शिक्षाविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	137.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	390.00
दर्शनशास्त्र शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	61.00
भौतिकी शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	203.00

(ख) अंग्रेजी-बोडो

भूगोल शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	515.00
अर्थशास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	185.00
भूविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	306.00
शिक्षा शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	97.00
समाजशास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	118.00
राजनीतिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	211.00
पुरातत्वविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	157.00
गणित शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	35.00
प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	720.00
भौतिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	652.00
प्राणिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	417.00

संदर्भ ग्रंथ

ऐतिहासिक नगर	195.00	भारत में गैस उत्पादन एवं प्रबंधन	540.00
प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	109.00	भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन	559.00
समुद्री यात्राएं	79.00	2 दूरीक एवं 2 मानकित समष्टियों में संपात	
विश्व दर्शन	53.00	एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
अपशिष्ट प्रबंधन	17.00	भारत में प्याज एवं लहसुन की खेती	82.00
कोयला: एक परिचय	115.00	ठोस पदार्थ यांत्रिकी	995.00
वाहितमल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00	वैज्ञानिक शब्दावली: अनुवाद एवं मौलिक लेखन	34.00
पर्यावरण प्रदूषण : नियंत्रण एवं प्रबंधन	23.00		
मृदा-उर्वरता	410.00	पादपों में कीट प्रतिरोध और	
ऊर्जा-संसाधन और संरक्षण	105.00	समेकित कीट प्रबंधन	367.00
पशुओं के कवकीय रोग:		स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन	167.00
उनका उपचार एवं नियंत्रण	93.00	भेड़ बकरियों के रोग एवं उनका नियंत्रण	343.00
पराज्यामितीय फलन	90.00	भविष्य की आशा: हिंद महासागर	154.00
सामाजिक एंव प्रक्षेत्र वानिकी	54.00	भारतीय कृषि का विकास	155.00
विश्व के प्रमुख धर्म	118.00	विकास मनोविज्ञान भाग-1	40.00
पृथ्वी : उद्भव और विकास	470.00	विकास मनोविज्ञान भाग-2	30.00
पृथ्वी से पुरातत्व	40.00	कृषिजन्य दुर्घटनाएं	25.00
इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी	90.00	इलेक्ट्रॉनिक मापन	31.00
द्रवचालित मशीन	66.50	वनस्पतिविज्ञान पाठमाला	16.00
मैग्नेसाइट : एक भूवैज्ञानिक अध्ययन	214.00	इस्पात परिचय	146.00
मृदा एवं पादप-पोषण	367.00	जैव-प्रौद्योगिकी: अनुसंधान एवं विकास	134.00
नलकूप एवं भौमजल अभियांत्रिकी	398.00	विश्व के प्रमुख दार्शनिक	433.00

विश्व के प्रमख धर्मों में धर्मसमभाव की अवधारणा : एक तुलनात्मक अध्ययन	490.00	प्राकृतिक खेती	167.00
समकालीन भारतीय दर्शन के कुछ मानववादी चिंतक : तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन	153.00	हिंदी विज्ञान पत्रिकारिता: कल, आज और कल	
		मानसून पवन: भारतीय जलवायु का आधार	112.36
		हिंदी में स्वतंत्रता-परवर्ती विज्ञान लेखन	280.00

ग्राहक फार्म

सेवा में
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिम खंड-7 रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066
महोदय,

कृपया मुझे ''विज्ञान गारिमा सिंधु'' (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए----------से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ----------रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्रफ्ट---------- सं. दिनांक ----------द्वारा भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम ----------

पूरा पता ----------

भवदीय

हस्ताक्षर

सदस्यता शुल्क	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
प्रति अंक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
प्रति अंक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

डिमांड ड्राफ्ट ''अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग'' के पक्ष में नई दिल्ली स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम व पूरा पता भी लिखे। ड्राफ्ट 'एकाउंट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाण-पत्र भी संलग्न करें :

विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी/श्रीमती/श्री----------इस विद्यालय/महाविद्यालय/विश्वविद्यालय के.....विभाग के छात्र/की छात्रा है।

हस्ताक्षर
(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)
(मोहर)

बिक्री संबंधी नियम

1. आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं। आयोग पटल:- वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, दिल्ली-110066

2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25 प्रतिशत की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।

3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी किया जाता है। अपेक्षित धन राशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिकी तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T., New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।

4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉर्वडिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।

5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें सड़क परिवहन (ट्रांसपोर्ट) से भेजी जाती हैं तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन-व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।

6. पुस्तकें सड़क परिवहन से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

7. सड़क परिवहन से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहें तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके स्वयं पुस्तकें प्राप्त कर सकती है।

8. दिल्ली तथा उससे नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नहीं होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।

9. पुस्तकों की पैकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंचता है तो उसका दायित्व आयोग पर नहीं होगा।

10. सामान्यत: बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नहीं होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में पुस्तकें ही दी जाएंगी।

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र. सं.	पता
1.	**प्रकाशन नियंत्रक** प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय के पीछे सिविल लाइन्स, दिल्ली- 110 054
2.	**किताब महल** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड़ग सिंह मार्ग, स्टेट एम्पोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली- 110 011
3.	**पुस्तक डिपो** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के. एस. राय मार्ग, कोलकाता-700 001
4.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई-400 020
5.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन गेट नं. 3, नई दिल्ली-110 001
6.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, (लॉयर्स चैंबर) दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली-110 003
7.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग संघ लोक सेवा आयोग, शाहजहा रोड धौलपुर हाउस, नई दिल्ली- 110 001

© भारत सरकार
नियंत्रक प्रकाशन

82-83 पी.सी.एस.टी.टी. (7 - 12) 2012

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

Printed by the Manager, Government of India Press, Ring Road, Maya Puri, New Delhi - 110064
and Published by the Controller of Publications, Delhi - 110054